श्री अरविन्द कर्मधारा

जुलाई-अगस्त-2022

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

(दिल्ली शाखा का मुखपत्र)

जुलाई-अगस्त -२०२२ अंक -४

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

सुश्री तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द

आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

15 अगस्त 1947 आजाद भारत का जन्म दिन है। यह उसके लिए एक पुराने युग के अंत, एक नए युग की शुरुआत का प्रतीक है। लेकिन हम इसे अपने जीवन से भी जोड़ सकते हैं और एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में कार्य कर सकते हैं जो पूरी दुनिया के लिए, मानवता के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भविष्य के लिए एक नए युग के उद्घाटन में एक महत्वपूर्ण तारीख है।

15 अगस्त मेरा अपना जन्मदिन है और यह मेरे लिए स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता की बात है कि इसे इतना बड़ा महत्व प्राप्त हुआ। मैं इसे संयोग या एक आकस्मिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि उस दिव्य शक्ति की स्वीकृति और मुहर के रूप में लेता हूं जो उस कार्य में मेरे कदमों का मार्गदर्शन करती है जिसके साथ मैंने जीवन शुरू किया,यह इसके पूर्ण फल की शुरुआत हैं। वस्तुतः, इसमें लगभग सभी विश्व-आंदोलनों को देखा जा सकता है, जिन्हें मैंने अपने जीवनकाल में पूरा होते हुए देखने की आशा की थी, हालांकि तब वे अव्यावहारिक सपनों की तरह लग रहे थे, सफल होने या उपलब्धि के रास्ते पर थे। इन सभी आंदोलनों में स्वतंत्र भारत एक बड़ी भूमिका निभा सकता है और अग्रणी स्थान ले सकता है।

- श्री अरविन्द

प्रार्थना और ध्यान

हे प्रभु !
मुझे अपना प्रकाश दे,
वर दे कि मैं कोई भूल न करूं। वर दे कि मैं जिस अनंत आदर सम्मान , जिस आध्यात्मिक भक्ति, जिस तीव्र और गंभीर प्रेम के साथ तेरी ओर अभिमुख होती हूं वह प्रदीप्त करने वाला विश्वासोत्पादक, संक्रामक हो और सभी हृदय में जागे।
हे प्रभु! शाश्वत स्वामी, तू मेरा प्रकाश और मेरी शांति है, तू मेरे चरणों को राह दिखा , मेरी आंखें खोल, मेरे हृदय को प्रबुद्ध कर और मुझे ऐसे मार्ग की ओर ले चल जो सीधे तेरी ओर जाता है। हे प्रभु ! वर दे कि तेरी इच्छा के सिवा मेरी कोई इच्छा ना हो और मेरे सभी कर्म तेरे विधान की अभिव्यक्ति हों।
एक महान ज्योति मुझे परिप्लावित कर रही है और मैं तेरे सिवा और किसी चीज के बारे में सचेतन नहीं हूं...।
शांति, शांति, समस्त पृथ्वी पर शांति।

– श्री माताजी

विषय-सूची

चाचाजी	»	6
भारत की स्वतन्त्रता एवं श्री अरविन्द का जन्म दिन	»	9
श्रीअरविन्द के आलोक में 'वेद'	»	10
मैली चुनरी	»	13
राष्ट्र-इकाई का निर्माण	»	13
शान्ति	»	14
श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की दृष्टि में भारत वर्ष का स्वरूप	»	14
और उसके चेतनात्मक आधार	»	17
सन्तों का जीवन	»	18
समता	»	18
हमारा योग और उद्धेश्य	»	19
दिव्य पूर्णता की ओर	»	22
श्री अरविन्द, राष्ट्रीयता के अग्रदूत	»	32
आश्रम-गतिविधिया	»	45

संपादकीय

प्रिय पाठक गण,

भारत वासियों के लिए श्री अरविंद की 150 वी जयंती समारोह और भारतवर्ष की स्वाधीनता के 75 वें वर्ष का अमृत महोत्सव परस्पर प्रतीकात्मक रूप से संबद्ध घटनाएं हैं । श्री अरविंद का व्यक्तित्व अपने आप में इतना व्यापक है कि उन्हें केवल इतिहास के पृष्ठों में सीमित नहीं किया जा सकता बल्कि, वे तो भविष्य के, समस्त मानवता के भविष्य के उन्नायक हैं। उनका दर्शन और उनका राष्ट्रवाद आध्यात्मिकता के आरोहण का मार्गदर्शक है।उनका दर्शन हमें भौतिक जीवन से संन्यास नहीं बल्कि संसार में दिव्यता की स्थापना का संदेश देता है । श्री अरविंद मानव समाज को 'दिव्य देह में दिव्य जीवन' का आदर्श प्रदान करते हैं। वेअति मानस जगत की उद्घोषणा करते हैं । श्री अरविंद सामान्य भौतिक संसार के रूपांतरण की बात करते हैं । स्मरणीय है कि श्रीअरविंद की जन्म शताब्दी के अवसर पर श्रीमाँ ने प्रेरणा दी थी कि देश के कोने- कोने में,गांव-गांव और नगर नगर में श्री अरविंद की शिक्षा को प्रसारित किया जाए। लोगों को इस तथ्य से अवगत कराया जाए कि श्री अरविंद ने हमारे लिए, संपूर्ण मानव जाति के लिए कितना बड़ा त्याग किया है । उन्होंने कहा था कि इसके लिए जो कुछ भी करना पड़े, तुम्हें करना चाहिए । पुस्तकें वितरित करो, वार्ताएं आयोजित करो ,पत्र-पत्रिकाएं निकालो कुछ भी! उल्लेखनीय है कि उसी प्रेरणा के वशीभूत उसी आदेश का पालन करते हुए हमारी इस पत्रिका 'श्री अरविंद कर्मधारा' का आरंभ किया गया। पत्रिका का यह नाम भी श्रीमाँ द्वारा ही दिया गया था । आज भी श्री अरविंद कर्मधारा श्रीमां की उस प्रेरणा और आदेश के पालन में पूर्ण निष्ठा पूर्वक जारी है। श्रीमाँ ने हमें ना केवल श्री अरविंद के व्यक्तित्व की व्यापकता से परिचित कराया बल्कि ईश्वर के पथ पर चलने में हमारा पथ प्रदर्शन भी किया है। मां ने प्रार्थना और ध्यान के माध्यम से हमें जीवन के लक्ष्य पर बढ़ना सिखाया । प्रार्थना में कितनी शक्ति है ,श्रीमाँ का जीवन इसका जीवंत उदाहरण है। आज विज्ञान भी भागवत जीवन की सच्चाई और भगवद् कृपा की शक्ति में विश्वास और आस्था रखने को बाध्य है।जब बात है प्रार्थना के प्रभाव की तो स्मरण हो आती है एक घटना जिसका उल्लेख करना प्रासंगिक है-–

यह घटना बड़ौदा के एक वरिष्ठ डॉक्टर की आपबीती है , जिसने उनका जीवन ही बदल दिया। वे हृदय रोग विशेषज्ञ हैं। उनके अनुसार:

*"एक दिन मेरे पास एक दंपति अपनी छः साल की बच्ची को लेकर आए। निरीक्षण के बाद पता चला कि उसके हृदय में धमनियां पूर्ण रूप से ब्लॉक हो चुकी हैं। मैंने अपनी पूरी टीम से विचार-विमर्श कर ने के बाद उस दंपति से कहा कि 30% संभावना है बच्ची के जीवनके बचने की । open heart surgery के बाद ,नहीं तो बच्ची के पास तीन महीने का समय है। माता-पिता भावुक हो कर बोले कि वह सर्जरी करायेंगे। *

*सर्जरी के पांच दिन पहले बच्ची को आश्रम में भर्ती कर लिया गया। उसकी माँ को प्रार्थना में अटूट विश्वास था। वह सुबह शाम बच्ची को यही कहती कि तुम्हारे हृदय में भगवान रहते हैं,(God lives in ur heart..)वह तुम्हें कुछ नहीं होने देंगे।

सर्जरी के दिन मैंने उस बच्ची से कहा; तुम चिंता मत करो सर्जरी के बाद तुम बिल्कुल अच्छी हो जाओगी। (don't worry u will be alright after surgery.) उसने कहा डाक्टर !मैं बिलकुल चिंतित नहीं हूँ क्योंकि मेरे हृदय में भगवान रहते हैं (am not worried bcoz God is in my heart) पर surgery में आप जब आप मेरा हृदय खोलेंगे तो देखकर मुझे बताना कि भगवान कैसे दिखते हैं।

ऑपरेशन के दौरान डॉक्टर को पता चल गया कि कुछ नहीं हो सकता।

बच्ची को बचाना असंभव है। हृदय में रक्त की एक बूंद भी नहीं आ रही थी। निराश होकर मैंने अपनी टीम से वापिस बंद

कर सिलने का आदेश दिया। तभी मुझे बच्ची की आखिरी बात याद आई और मैं अपने रक्त भरे हाथों को जोड़ कर प्रार्थना करने लगा कि हे इश्वर! मेरा सारा अनुभव तो इस बच्ची को बचाने में असमर्थ है पर यदि आप इसके हृदय में विराजमान हो तो आप ही कुछ कीजिए।

यह मेरी पहली अश्रु पूर्ण प्रार्थना थी। इसी बीच मेरे सहायक डॉक्टर ने मुझे कोहनी मारी। मैं चमत्कार में विश्वास नहीं करता था, पर मैं स्तब्ध हो गया यह देखकर कि बच्ची के हृदय में रक्त का प्रवाह शुरू हो गया। मेरे 60 साल के डॉक्टरी जीवन में ऐसा पहली बार हुआ था।

*आपरेशन सफल तो हो गया पर मेरा जीवन बदल गया। मैंने बच्ची से कहा– भगवान को देखने की जिद मत करो उन्हें देखा नहीं जा सकता, लेकिन उन्हें अनुभव किया जा सकता है ।

(Don't make effort to see God..He can't be seen, He can be experienced...)

डॉक्टर साहब का कहना है कि

*इस घटना के बाद मैंने अपने आपरेशन थियेटर में प्रार्थना का नियम निभाना शुरू कर दिया। श्रीमाँ भी तो यही कहती हैं, 'सच्चाई के साथ भगवान को पुकारो हमारा सारा जीवन भगवान को निवेदित एक प्रार्थना होना चाहिए। सच्ची प्रार्थनाएं स्वीकार की जाती हैं लेकिन उनके भौतिक रूप में सफल होने में कुछ समय लगता है ।'

-श्रीमाँ
28 जून 1954

पाठकों आपके लिए पत्रिका का अगस्त मास काअंक पेश है।इसे पढ़ें, आत्मसात करें, और अपना सहयोग दें। हार्दिक शुभकामनाओं सहित–

-अपर्णा

"यदि तू है, तो तू मेरे अंतर को जानता है । मैं किसी भी ऐसी चीज की कामना नहीं करता, जो दूसरे चाहते हैं। मैं सिर्फ शक्ति चाहता हूँ ताकि इस देश को ऊँचा उठा सकूँ देश को देशवासियों के लिए, जिन्हें मैं प्यार करता हूं ,जीवित रहने और कर्म करने की अनुमति चाहता हूं। मैं इन्हें प्यार करता हूं, अतः प्रार्थना करता हूं, मेरा जीवन इन्हीं के लिए अर्पित हो।"

- श्री अरविन्द

चाचाजी

13 अगस्त हमारे दिल्ली आश्रम के संस्थापक श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर जिन्हें हम सब प्यार से ' चाचाजी' कहकर पुकारते हैं, का जन्मदिन है । तेरहवां अंक सभी अशुभ कह अस्वीकार करते हैं उसे चाचाजी सबसे शुभ मानते है-जैसे कि जिसे सारी दुनिया ने अस्वीकारा हो उसे उन्होंने सहर्ष स्वीकारा हो । प्रभु की इस सृष्टि में कुछ भी अशुभ नहीं , म्लान नहीं । एक लम्बे अरसे बाद नैनीताल आश्रम से चाचाजी दिल्ली आश्रम लौट आये,लौटे नहीं लौटा लाये गये चूँकि फ़क़ीरों का तो यूँ है कि जहाँ फ़क़ीरी का आनन्द आया , वहीं रम गये । ' फ़कीर - कुटीर ' में फिर से जान आ गई। उनके बिना वहाँ एक खालीपन सा लगता था , जब - जब मैं इधर से गुज़रता था , " फ़कीर - कुटीर ' मानो बेज़ान शब्द से थे । चाचाजी आये तो शब्द जीवित हो उठे , ' फ़क़ीर - कुटीर ' फिर आबाद हो गई, बुखार से पीड़ित वे चाहे किसी से बोले भी नहीं पर लगा आश्रम में सब भरा - भरा हो गया ।

मैं असमर्थ हूँ - चाचाजी के संघर्षमय जीवन और उनके जीवन - संस्मरणों के बारे में लिखने में । किसी ने कहा, मैं उन लोगों से मिलूँ जिनका उनसे लम्बे अरसे तक सम्पर्क रहा हो तो मुझे कितनी ही रोचक घटनाओं का पता चलेगा , जो इस शुभदिन के अवसर पर छापी जा सकती हैं । पर मुझे लगा ऐसी तो सैकड़ों - हजारों घटनाऐं होंगी जिन्हें लिखने में बरसों लग जायेंगे चूंकि मैं तो जब भी चाचाजी से मिला वो एक संस्मरण बन गया । उनका चुटकी लेता हास्य , सरल बातों में जीवन की अमूल्य बातें कह जाना और सबसे उत्तम उनके विचार जो स्वयं उनके अनुभवों व आत्मविश्लेषण से उभरते हैं - दूसरों के विचारों का बोझ नहीं - एक असाधारण मौलिकता जो जीवन में यदा -कदा कुछ ही व्यक्तियों में देखने को मिलती है । इस सम्बन्ध में मुझे याद आया कि चाचाजी ने एक दिन मुझसे कहा कि उन्होंने श्रीअरविन्द या श्रीमाँ की कोई पुस्तक नहीं पढ़ी । उन्होंने उस घटना के बारे में भी बताया जब श्रीमाँ ने उन्हें एक पुस्तक पढ़ने को दी और वे उसे वर्षों अपने सिराहने के नीचे रखे रहे , पर एक अक्षर भी नहीं पढ़ा । कौतुहल से मैंने पूछा , तो चाचाजी कभी जीवन में आपके समक्ष ऐसा प्रश्न नहीं आया जहाँ आपने अपने आपको सोचने में असमर्थ पाया हो और ये जिज्ञासा उठी हो कि आप श्रीअरविन्द या श्रीमाँ ने जो लिखा है उसे पढ़ें " । वे बोले- " जब मुझे अपना ध्येय मालूम हुआ तो मैंने जो सोचा वही किया चाहे मुझे कुछ भी छोड़ना पड़ा हो । " सच तो यह है कि चाचाजी ने अपना सारा जीवन ही श्रीअरविन्द व श्रीमां के दर्शन के अनुरूप ढाल दिया । ' समर्पण ' के लिए ' त्याग ' अपेक्षित है । हम बस ईश्वर की बात करते हैं पर अपनी इच्छाओं से भी जुड़े रहते हैं , वही हमारे भ्रम व मानसिक क्षोभ का कारण है। इच्छाओं का छोड़ना, कहीं भाग जाना नहीं , सन्यास ले लेना नहीं , यह है आंतरिक परिवर्तन की साधना , भीतर संन्यास का उपजना । श्रीअरविन्द व श्रीमाँ ने इस सम्बन्ध में इतना कुछ कहा है कि उस विषय में जाने का अर्थ होगा अपने मूल विषय से हट जाना ।

इस आश्रम का जन्म अपने में एक महान घटना होगी , किस तरह यह शुरू हुआ होगा , कैसे इसकी कल्पना की होगी, कितनी कितनी –मुसीबतें और आर्थिक परेशानियों में इसका विकास हुआ होगा बस सोचता भर हूँ तो चाचाजी के वे संघर्ष भरे दिन जैसे उनकी आँखों से झांकते नजर आते हैं और वे बस इतना कहते हैं 'मेरे स्वप्नों के इस महल का उसने मुझे चौकीदार (भगवान ने) बना दिया , 'कहा तुम बाहर खड़े रहकर घण्टी बजाया करो " चाजी जी इसे ही अपना सबसे बड़ा भाग्य मानते है । उस लम्बे संघर्ष की कहानी सुनकर मुझे रोमांच हो उठता

है ।मुझे बस दिखाई देता है एक संकल्प , अनन्य विश्वास और अटूटा श्रद्धा । अब जब कोई कहता है कि कितना सुन्दर है आश्रम !कितनी शांति है-, तो मेरी आंखो के के सामने एक दृश्य घूम जाता है जहाँ चाचाजी स्वयं अपने हाथों से अपने स्वप्नों के राजमहल की एक एक ईंट चुन रहे है । अ,ब भी इस वृद्धावस्था में थी उनकी आंखों में वही विश्वास श्रद्धा व संकल्प दिखाई देता है जैसे ये निर्माण कार्य रुका न हो,वो कुछ तोड़ते हों , कुछ बनाते हों, अपने विधाता के लिए अनमोल निर्माण एक –राजमहल नहीं,-'राजमन्दिर'! शुरु शुरु में मुझे चाचाजी से भय लगा करता था-, कहीं कोई अज्ञान भरी बात न कर जाऊँ और वे कहीं नाराज न हो जायें । पर न जाने कब मैंने उनकी बाहरी कठोरता के भीतर कोमलता , प्रेम व आध्यात्मिक चमक के दर्शन कर लिए कि सारा भय विलुप्त हो गया । याद आया प्राचीन बौद्ध मठों में प्रचलित कथानों के बारे में । शुरू में शरू –साधक जब आता था गुरु बहुत कठोरता का बर्ताव करते थे परखने के लिए कि वो ज्ञान पाने का पात्र है या नहीं । और साधक अगर पहली परीक्षा में सफल हो जाता तो उसे उच्च साधना के लिए तैयार किया जाता था । लगा जैसे ये कठोरता का कवच चाचाजी ने स्वयं अपनी अनन्तर साधना के लिए पहन रखा हो — कि कहीं अहम् की कालिमा अन्तर की कोमलता को छू न जाये । बाहरी व्यवहार से हम किसी व्यक्ति के बारे में कुछ नहीं जान सकते । किस तरह आत्मविकास होता है , उन्नति होती है , वो सिर्फ बाहरी कसे हुए मानसिक पैमाने से नहीं जाना जा सकता ।

इस 16 अगस्त को चाचाजी 73 वर्ष पूरे कर लेंगे । दिल्ली के स्वाधीनता सेनानी - राजपत्र भाग - एक , दिल्ली प्रशासनने दिल्ली में चाचाजी एवं उनकी पत्नी श्रीमति दयावतीजी के बारे में निम्न वर्णन दिया है—

" सुरेन्द्रनाथ जौहर : जन्म 13 अगस्त 1903 , ग्राम वहाली , जिला जहलम (अब पाकिस्तान में) , निवासी : श्रीअरविन्द आश्रम , नई दिल्ली , शिक्षा : डी ० ए ० बी ० कॉलिज व नेशनल कॉलिज , लाहौर , सदस्य : जिला कांग्रेस कमेटी (1923) सदस्य : प्रांतीय काँग्रेस कमेटी (1934-47) भाग लिया : सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience Movement) (1930) " भारत छोड़ो " आन्दोलन , (Quit India Movement) (1942) ।

मार्शल - लॉ (फ़ौजी कानून) (1919) के नियमों का उल्लंघन , ब्रिटिश सार्जेटों द्वारा पिटाई , यंत्रणाएँ झेली- उत्पीड़न और जबरन मार्च; स्वदेशी आन्दोलन (1930) विदेशी कपड़े का बहिष्कार - चाँदनी चौक के समूचे कटरों में संगठन ;14 नवम्बर 1930 को घंटाघर पर काँग्रेस का स्वाधीनता - दिवस प्रस्ताव पढ़ा ; गिरफ्तारी और छ : कानून भंग के जुर्मों पर मुक़द्दमे , नौ मास व छ : मास का कठोर कारावास सेंट्रल जेल मुलतान में भोगा - जेल में भीषण यन्त्रणाएँ , सन् 1931 में गाँधी - इर्विन समझौते के अन्तर्गत रिहाई ; सन् बयालीस (1942) में भूमिगत (underground) होकर श्रीमती अरुणा आसफ़अली और श्री जुगलकिशोर खन्ना के साथ आन्दोलन का संगठन व संचालन ; 17 सितम्बर 1942 पिस्तौल की नोक पर प्रचंड संघर्ष के बाद गिरफ्तारी ; हज़ारों की संख्या में अनुयायियों की भीड़ के बीच कनॉट प्लेस में अपनी धर्मपत्नी के साथ घसीटे गये ; कठोर हाथापाई के दौरान ड्यूटी पर तैनात मजिस्ट्रेट ने इन्हें गोली से उड़ा देने का आदेश दिया - दैवयोग से रक्षा ; लगभग दो वर्षों के तहत मुकद्दमे चलते रहे; अंत में 6 मई 1944 को जेल से रिहाई ।

दयावती : जन्म 1911 , दिल्ली के प्रमुख काँग्रेसी श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर की धर्मपत्नी ; सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience Movement) - (1932-34) में भाग लिया ; 12 अक्टूबर , 1932 का छ : मास का कठोर कारावास का दण्डादेश भुगता । "

चाचाजी उन दिनों अस्वस्थ रहते थे । बीमारी ने और वृद्धावस्था ने चाहे उनके शरीर को जीर्ण - शीर्ण कर दिया हो लेकिन अब भी जीवनसागर की लहरें कहीं भी उनमें लेशमात्र कम नहीं हुई हैं चैतन्य , सजग एवं कितनी ही पुरानी - पुरानी बातों को , घटनाओं को शब्द - शब्द वैसा ही सुना देने में समर्थ चाचाजी जब बोलते थे तो सब ओर हंसी के ठहाके गूँज उठते थे , सारा वातावरण जीवन्त हो उठता है । साधकों को साधना - सूत्र मिलते हैं तो मानसिक उलझनों में व्यक्ति सब भूलकर आनन्दित हो जाते । उनके जन्मदिन के इस शुभ अवसर पर हम सभी उनके प्रेरक जीवन से आस्था और समर्पण की भावना का भावना का अनुभाग आनुसरण करें ।

-संजय

भारत की स्वतन्त्रता एवं श्री अरविन्द का जन्म दिन डॉ.जे. पी.सिंह पाण्डिचेरी में बहुत पहले श्रीअरविन्द ने श्री पुराणी से कहा था, (1918 में) "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि भारत स्वतंत्र हो जायेगा।" श्री माता जी ने सन् 1920 में अपने अंतर्दर्शन में देखा कि भारत स्वतंत्र हो गया है।

15 अगस्त 1872 को श्रीअरविन्द का जन्म हुआ था। तो आज श्रीअरविन्द का जन्म दिन भी है। श्रीअरविन्द ने बराबर ही भारत के प्रश्न को अपनी चेतना के अग्रभाग में रखा और सतत् उसकी स्वंतत्रता के लिए पर्दे के पीछे से अपने निजी तरीके से कार्य किया है। अंत में, आश्चर्यो का आश्चर्य यह कि भारत श्री अरविन्द के निजी जन्म दिन, 15 अगस्त, 1947 को स्वंतत्र होता है, मानो मातृभूमि की उनकी निर्दोष सेवाओं की स्वीकृति के रुप में भगवान के यहाँ से आया हुआ वह एक सर्वोच्च उपहार हो।

उस अवसर पर त्रिचिनापल्ली आकाशवाणी की ओर से एक संदेश देने की प्रार्थना की गयी और उन्होंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। यहाँ पर कुछ प्रसंगोचित अंश दिये जा रहे हैं। "15 अगस्त, 1947 स्वतंत्र भारत का जन्म दिन है। यह उसके लिए एक पुराने युग का अंत तथा एक नवीन युग का प्रारम्भ सूचित करता है। परन्तु एक स्वाधीन राष्ट्र के रुप में हम अपने जीवन तथा कर्मों के द्वारा उसे ऐसे नवीन युग का प्रमुख दिवस बना सकते हैं जो सम्पूर्ण विश्व के लिए मानव जाति के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भविष्य के लिए उद्घाटित हो रहा है। "15 अगस्त मेरा अपना जन्म दिन है और स्वभावत: ही वह मेरे लिए बड़े आनन्द की बात है कि इस तिथि को इतना विशाल महत्त्व प्राप्त हो रहा है। मैं इस संयोग को एक आकस्मिक घटना के रुप में नहीं ले रहा हूँ, बल्कि अपनी पथ-प्रदर्शिक भागवती शक्ति का उस कार्य के लिए अनुमोदन तथा मुहरछाप मानता हूँ जिससे मैंने अपना जीवन प्रारम्भ किया था तथा उस कार्य के पूर्ण सफल होने का प्रारम्भ मानता हूँ......।" उसके बाद घटित हुई वे सब बाते जिनसे वह विशाल महत्व प्रकट हुआ है और भारत का महान भविष्य उदघाटित हुआ है। इस तरह वह संदेश समस्त भारत, समस्त विश्व में गुंजरित होता गया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्री अरविन्द स्वयं तिथियों के इस संयोग को खुले तौर पर भारत की स्वतंत्रता के लिए की गयी अपनी अथक सेवाओं की मान्यता के रुप में भगवान का स्वेच्छा-कृत कर्म मान रहे हैं। क्योंकि, अबतक वह अपने आप को परदे के पीछे रखने के ही अभ्यासी रहे हैं।

श्रीअरविन्द ने यह भी लिखा कि "संसार में घटित होने के लिए मैंने कभी ऐसी वस्तु का प्रबल और सतत् संकल्प नहीं किया जो अंत में घटित होकर न रहा हो, भले ही उसमें कुछ देर लगी हो या तार या संहार का सामना करना पड़ा हो।" और उन्होंने ने यह भविष्यवाणी की कि- "विभाजन अवश्य दूर होगा।"

यह एक कौतूहल का विषय है कि इन दो तिथियों का संयोग (श्रीअरविन्द का जन्म दिन एवं भारत की स्वतंत्रता) किस प्रक्रिया के द्वारा घटित हुआ। इसका उत्तर "मदर इंडिया" के अगस्त, 1985 के अंक में प्रकाशित इतिहास के एक पृष्ठ में मिलता है: " भला 15 अगस्त-श्री अरविन्द का जन्मदिन-भारत के स्वतंत्रता दिवस के रुप में कैसे चुना गया?" मि. लारी कोलिन्स तथा डोमिनीक ला पियेर द्वारा लिखित "अर्द्धरात्रि में स्वतंत्रता" (Freedom at midnight) नामक पुस्तक के आठवें अध्याय में इस प्रकार लिखा है: एसेम्बली हाल में भारतीय पत्रकारों की बड़ी भीड़ लगी थी। अचानक........एक भारतीय पत्रकार की गुमनाम वाणी कमरे में गूँज उठी........। "महाशय।" वाणी बोली, "यदि सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि आज के दिन तथा सत्ता के हस्तांतरण के दिन के बीच शीघ्रता लाने की बहुत अधिक आवश्यकता है तो निश्चय ही कोई एक दिन मन में होगा।" हाँ, निस्संदेह, माउण्टबेटेन ने उत्तर दिया। "और आपने यदि कोई तारीख चुन ली है, महाशय, तो वह तारीख कौन सी है?" जोर देकर प्रश्नकर्त्ता ने पूछा।........ उन्होंने ठसा-ठस भरे ऐसेम्बली हाल की और नजर घुमायी। हाल में बैठे सभी चेहरे उनकी ओर मुड़ गये......।

"हाँ, उन्होंने कहा, मैंने सत्ता के हस्तांतरण के लिए एक तारीख चुन ली है......।" यह वह तारीख थी जो उनके अपने जीवन के एक अत्यंत विजयशाली घड़ी के साथ उनकी स्मृति में जड़ी हुई थी। यह वह दिन था जब वर्मा के जंगलों में होने वाला उनका लंबा युद्ध समाप्त हुआ था जिसमें जापानी साम्राज्य के बिना शर्त समर्पण कर दिया था........।" अतिंम रुप से, 15 अगस्त, 1947 को भारतीयों के हाथों में शासनाधिकार सौंप दिया जायेगा।"

लुइस माउण्टबेटेन ने जो स्वयं अपनी ओर से भारत की स्वाधीनता की तिथि की घोषण करने का सहज-स्वाभाविक निर्णय किया वह, एक बम विस्फोट के समान था।
इस तरह हम देखते हैं कि कितना दुर्ज्ञेय है विधाता का विधान! आज कौन याद रखता है माउण्टबेटेन की विजय की तारीख? यहाँ सदा-सर्वदा के लिए श्रीअरविन्द के जन्म दिन के साथ जुड़ गयी है।

श्रीमाता जी ने कहा: "विश्व इतिहास में श्रीअरविन्द जो कुछ प्रस्थापित कर रहे हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, यहाँ तक कि कोई भगवत्प्रदत्तज्ञान भी नहीं है, वह तो परत्पर भगवान से आया हुआ एक सुनिश्चित कार्य है।" जितना ही शीघ्र हम स्वीकार कर लेगें कि भारत की सच्ची स्वाधीनता की तिथि के रुप में स्वयं भगवान ने 15 अगस्त को निश्चित किया था उतना ही भारत के लिए अच्छा होगा। अत: हम सभी को राष्ट्र के सर्वांगीण उत्थान हेतु समग्र रुप से जुट जाना चाहिए।

भारत की स्वतन्त्रता एवं श्री अरविन्द का जन्म दिन

- डॉ.जे.पी.सिंह

पाण्डिचेरी में बहुत पहले श्रीअरविन्द ने श्री पुराणी से कहा था, (1918 में) "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि भारत स्वतंत्र हो जायेगा।" श्री माता जी ने सन् 1920 में अपने अंतर्दर्शन में देखा कि भारत स्वतंत्र हो गया है।

15 अगस्त 1872 को श्रीअरविन्द का जन्म हुआ था। तो आज श्रीअरविन्द का जन्म दिन भी है। श्रीअरविन्द ने बराबर ही भारत के प्रश्न को अपनी चेतना के अग्रभाग में रखा और सतत् उसकी स्वंतत्रता के लिए पर्दे के पीछे से अपने निजी तरीके से कार्य किया है। अंत में, आश्चर्यो का आश्चर्य यह कि भारत श्री अरविन्द के निजी जन्म दिन, 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र होता है, मानो मातृभूमि की उनकी निर्दोष सेवाओं की स्वीकृति के रुप में भगवान के यहाँ से आया हुआ वह एक सर्वोच्च उपहार हो।

उस अवसर पर त्रिचिनापल्ली आकाशवाणी की ओर से एक संदेश देने की प्रार्थना की गयी और उन्होंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। यहाँ पर कुछ प्रसंगोचित अंश दिये जा रहे हैं। "15 अगस्त, 1947 स्वतंत्र भारत का जन्म दिन है। यह उसके लिए एक पुराने युग का अंत तथा एक नवीन युग का प्रारम्भ सूचित करता है। परन्तु एक स्वाधीन राष्ट्र के रुप में हम अपने जीवन तथा कर्मों के द्वारा उसे ऐसे नवीन युग का प्रमुख दिवस बना सकते हैं जो सम्पूर्ण विश्व के लिए मानव जाति के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भविष्य के लिए उद्घाटित हो रहा है। "15 अगस्त मेरा अपना जन्म दिन है और स्वभावत: ही वह मेरे लिए बड़े आनन्द की बात है कि इस तिथि को इतना विशाल महत्त्व प्राप्त हो रहा है। मैं इस संयोग को एक आकस्मिक घटना के रुप में नहीं ले रहा हूँ, बल्कि अपनी पथ-प्रदर्शिक भागवती शक्ति का उस कार्य के लिए अनुमोदन तथा मुहरछाप मानता हूँ जिससे मैंने अपना जीवन प्रारम्भ किया था तथा उस कार्य के पूर्ण सफल होने का प्रारम्भ मानता हूँ......।" उसके बाद घटित हुई वे सब बाते जिनसे वह विशाल महत्व प्रकट हुआ है और भारत का महान भविष्य उदघाटित हुआ है। इस तरह वह संदेश समस्त भारत, समस्त विश्व में गुंजरित होता गया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्री अरविन्द स्वयं तिथियों के इस संयोग को खुले तौर पर भारत की स्वतंत्रता के लिए की गयी अपनी अथक सेवाओं की मान्यता के रुप में भगवान का स्वेच्छा-कृत कर्म मान रहे हैं। क्योंकि, अबतक वह अपने आप को परदे के पीछे रखने के ही अभ्यासी रहे हैं।

श्रीअरविन्द ने यह भी लिखा कि "संसार में घटित होने के लिए मैंने कभी ऐसी वस्तु का प्रबल और सतत् संकल्प नहीं किया जो अंत में घटित होकर न रहा हो, भले ही उसमें कुछ देर लगी हो या तार या संहार का सामना करना पड़ा हो।" और उन्होंने ने यह भविष्यवाणी की कि- "विभाजन अवश्य दूर होगा।"

यह एक कौतूहल का विषय है कि इन दो तिथियों का संयोग (श्रीअरविन्द का जन्म दिन एवं भारत की स्वतंत्रता) किस प्रक्रिया के द्वारा घटित हुआ। इसका उत्तर "मदर इंडिया" के अगस्त, 1985 के अंक में प्रकाशित इतिहास के एक पृष्ठ में मिलता है: " भला 15 अगस्त-श्री अरविन्द का जन्मदिन-भारत के स्वतंत्रता दिवस के रुप में कैसे चुना गया?" मि. लारी कोलिन्स तथा डोमिनीक ला पियेर द्वारा लिखित "अर्द्धरात्रि में स्वतंत्रता" (Freedom at midnight) नामक पुस्तक के आठवें अध्याय में इस प्रकार लिखा है: एसेम्बली हाल में भारतीय पत्रकारों की बड़ी भीड़ लगी थी। अचानक........एक भारतीय पत्रकार की गुमनाम वाणी कमरे में गूँज उठी........। "महाशय।" वाणी बोली, "यदि सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि आज के दिन तथा सत्ता के हस्तांतरण के दिन के बीच शीघ्रता लाने की बहुत अधिक आवश्यकता है तो निश्चय ही कोई एक दिन मन में होगा।" हाँ, निस्संदेह, माउण्टबेटेन ने उत्तर दिया। "और आपने यदि कोई तारीख चुन ली है, महाशय, तो वह तारीख कौन सी है?" जोर देकर प्रश्नकर्त्ता ने पूछा।........ उन्होंने ठसा-ठस भरे ऐसेम्बली हाल की और नजर घुमायी।

हाल में बैठे सभी चेहरे उनकी ओर मुड़ गये......।

“हाँ, उन्होंने कहा, मैंने सत्ता के हस्तांतरण के लिए एक तारीख चुन ली है......।” यह वह तारीख थी जो उनके अपने जीवन के एक अत्यंत विजयशाली घड़ी के साथ उनकी स्मृति में जड़ी हुई थी। यह वह दिन था जब वर्मा के जंगलों में होने वाला उनका लंबा युद्ध समाप्त हुआ था जिसमें जापानी साम्राज्य के बिना शर्त समर्पण कर दिया था........।” अतिंम रुप से, 15 अगस्त, 1947 को भारतीयों के हाथों में शासनाधिकार सौंप दिया जायेगा।”

लुइस माउण्टबेटेन ने जो स्वयं अपनी ओर से भारत की स्वाधीनता की तिथि की घोषण करने का सहज-स्वाभाविक निर्णय किया वह, एक बम विस्फोट के समान था।

इस तरह हम देखते हैं कि कितना दर्ज्ञेय है विधाता का विधान! आज कौन याद रखता है माउण्टबेटेन की विजय की तारीख? यहाँ सदा-सर्वदा के लिए श्रीअरविन्द के जन्म दिन के साथ जुड़ गयी है।

श्रीमाता जी ने कहा: “विश्व इतिहास में श्रीअरविन्द जो कुछ प्रस्थापित कर रहे हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, यहाँ तक कि कोई भगवत्प्रदत्तज्ञान भी नहीं है, वह तो परत्पर भगवान से आया हुआ एक सुनिश्चित कार्य है।” जितना ही शीघ्र हम स्वीकार कर लेगें कि भारत की सच्ची स्वाधीनता की तिथि के रुप में स्वयं भगवान ने 15 अगस्त को निश्चित किया था उतना ही भारत के लिए अच्छा होगा। अत: हम सभी को राष्ट्र के सर्वांगीण उत्थान हेतु समग्र रुप से जुट जाना चाहिए।

महर्षि श्रीअरविन्द के आलोक में ‘वेद’

इस विषय पर लेखनी उठाने की अधिकृत पात्रता न होते हुए भी माँ का आवाहन कर जैसे बालक माँ की गोद या संरक्षण में अपने को सामर्थ्यवान मान बैठता है उसी भावना के अनुरुप प्रस्तुत है यह लघु-प्रयास!

वेद भारतीय मनीषा का जगत को प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ उपहार हैं। इन्हें हमारे ऋषियों, मुनियों और योगियों ने अरण्यों में प्रकृति के साहचर्य में अपनी भक्ति और तपस्या के आधार पर होने वाले आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर संस्कृत में लिपिबद्ध किया है। भारतीय वेदों में स्पष्ट घोषणा है कि ‘दाता ही पूज्य हैं’- देने में जो सुख है उससे बड़ा कोई अन्य सुख नहीं है। वेदों में इन्द्र, अग्नि, वायु, वरूण, सोम, सूर्य आदि ही आराध्य देवता हैं। इनकी प्रार्थनाएँ और स्तुतियां वास्तव में दान की प्रमुखता का ही बखान करती हैं। श्री अरविन्द ने प्रकृति को भी देव स्वरूप मानकर स्थान देवता, कुल देवता, ग्राम देवता, देश देवता, विश्व देवता, परात्पर देवता अंतत: अदिति जो समस्त रचना की आधारशक्ति ‘जगत्माता’ है उनकी मात्र परिकल्पना ही नहीं अपितु उनकी सिद्धि, उपलब्धि, साधना, आराधना, कार्यक्षेत्र, क्षमताओं और सम्भावनाओं का विषद विवेचन किया है। साथ ही आधुनिक विज्ञान के परिमित क्षेत्र की अब तक की उपलब्धियों के सूत्रों का विन्यास और सूक्ष्म संकेत भी गूढ़ भाषा में वेदों में निहित हैं इसका भी दिग्दर्शन कराया है- इस संदर्भ में उनकी सायंकालीन वार्त्ताएं एवं साधकों के विभिन्न पत्रों के उत्तर उल्लेखनीय हैं।

दान की पराकाष्ठा विषयक श्रीअरविन्द के वचन हैं-
“ जो नि:शेष भाव से और समग्र रूप से भगवान को दे डालते हैं, उन्हें भगवान भी अपने-आपको दे डालते हैं। उन्हीं के लिए ही है शांति, प्रकाश, शक्ति, सुख, स्वातंत्र्य, प्रसार, ज्ञान के ने शिखर और आनन्द के सागर”।

-श्रीअरविन्द क्षमताओं के साथ

श्रीअरविन्द ने अपना तन, मन, धन, उपलब्धियों और सम्पूर्ण रूप से भागवत कार्य अर्थात् संसार सें नई मानव प्रजाति और जगत में दिव्य जीवन के अग्रदूत बनकर अभिनव दाताओं की सूची में अग्रिम स्थान बना लिया है जिस हेतु मानवता उनकी चिर ऋणी रहेगी। वेद की भाषा में उनका कार्य ‘अपौरूएय’ (अपौरूएय) है।– दूसरे शब्दों में श्रीअरविन्द के आध्यात्मिक अनुभव प्राचीन ऋषियों की भाँति हस्टांकन पर आधारित हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो ‘वेदों’ में रेखांकित है वह है परात्पर शक्ति की लीला “एकोहं बहुस्यामि” अर्थात् प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सभी में उस परमशक्ति का अंश विद्यमान है; जिसे श्रीअरविन्द शब्दावली में “चैत्य पुरूष” कहा गया है इसीलिए

चेतना के विस्तार का कोई अन्त नहीं है। अत: वेद के अंत में 'नेति नेति' का गूढ़ संकेत मानवता को अनन्त विकास के मार्ग का दिग्दर्शन कराता है।

वर्तमान में मानवता विज्ञान और तकनीकी विकास से दिग्भ्रमित होकर यह मान बैठी थी कि 'मनुष्य' ही सृष्टि के विकास क्रम का सुमेरू है। किन्तु इसी 'मन' की विभाजक-संकीर्णता ने अपने लोभ, अज्ञान, द्वेष और अहंकार के वशीभूत होकर संसार की ऐसी छवि बना डाली है कि समस्त संसार महाविनाश की कगार पर खड़ा दिखाई दे रहा है।

कहते हैं कि 'प्रत्येक क्रिया की विपरीत प्रतिक्रिया होती है' इसी सिद्धान्त की परिपुष्टि में माँ-श्रीअरविन्द ने अपनी तपस्या-गुहा पाण्डिचेरी में सामूहिक तपस्या और अभीप्सा के द्वारा 'मन' के परे उच्च मनों के लोकों का उदघाटन और पृथ्वी पर उनका प्रतिस्थापन कर मानवता के अवरूद्ध विकास को सही दिशा प्रदान कर त्याग, ज्ञान, प्रेम और प्रकाश युक्त चेतना विकसित कर एक दिव्य जीवन की दिशा का मार्ग प्रशस्त कर एक नई मानव प्रजाति की संभावना को संसार के समक्ष 'अप्रतिम अवदान' के रूप में भेंट किया है।–
श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी इस दिशा में विश्व के लिए एक आकाश-दीप के समान मार्गदर्शन है।

वैदिक ऋषिओं की त्रिकालज्ञता के विषय में श्रीअरविन्द अपनी रचना

"The Supramental Manifestation upon Earth" में लिखते हैं- "The life of the ancient Rashis in Their Ashroms had such a connectin they were creators, educators, guides of men and the life of The Indian people in ancient times was lavgely developed and aurched by Their shoping influence."
Shri Aurobindo

तीसरा प्रमुख संदेश जो वेदों में निहित है वह सृजनक्षमता "शब्द ब्रहम" है जिसके अनुसार शब्दों में अनन्त शक्ति है, विशिष्ट दिशा अद्भुत संचालन शक्ति और विलक्षण प्रभाव है। शब्दों के सुसंगत प्रयोगों ने अनेकों प्रभावशाली मंत्र दिए हैं जो अपनी विशिष्ट उपलब्धियों हेतु राम बाण हैं। मंत्रों की सिद्धि द्वारा उच्च लोकों की शक्तियों के आशीर्वाद से मन, प्राण, शरीर और आत्मा उन्नत होते हैं। दधीचि की तपस्या ने उनकी हड्डियों में वज्र की क्षमता विकसित कर दी थी। वृत्तासुर के संहार हेतु उन्होंने अपनी स्वेच्छा से सहर्ष दान कर दी थीं। लोक कल्याण की भावना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है यह।

आधुनिक विज्ञान ने भी शब्द की सृजन क्षमता की पुष्टि की है। जर्मनी में प्रयोगशाला में विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न कर द्विआयामी आकृतियाँ और त्रिआयामी ठोस जैसे गोला, बेलन, घनाभ आदि को उत्पन्न किया जा चुका है।

भारतीय मनीषा के संगीतज्ञ तानसेन और उनके महान् गुरु हरिदास जी अपने संगीत से रोगों का निवारण, दीपक राग से दीप प्रज्वलित करने मेघराग से वर्षा लाने तथा दिव्य अनुभूतियाँ जाग्रत करने में सक्षम थे।

वेदों का चौथा महत्वपूर्ण अवदान 'यज्ञ परम्परा' है जिसके द्वारा विशेष आचार्य लौकिक एवं पारलौकिक फल प्रदान कर मनोवांछित इच्छाओं की पूर्ति करने में सक्षम थे। यज्ञमें प्रयुक्त मंत्र एवं भाव प्रकृति और उच्चतर लोकों के अधीश्वरों को प्रसन्न कर वांछित कामनाओं की पूर्ति संभव बनाते हैं। कई ऋषियों के आश्रमों में अतिथियों के आगमन के समय घृत उपलब्ध न होने पर निकटस्थ जल स्रोत के जल से भोजन पकवान बना लिये जाते थे। पश्चात ऋषि गण गौ सेवा से समतुल्य मात्रा में घी एकत्र कर जल-स्रोत में वापिस विसर्जित कर देते थे। प्रकृति और मानव का यह बहुत अद्भुत विनिमय कार्यक्रम उनकी अंतरंगता का प्रतीक है।

आजकल 'यज्ञ' पर की गई शोध हमें बतलाती है कि मंत्रोच्चार की ध्वनियों के प्रकम्पन और यज्ञ में आहुति की पुकार ऊर्ध्वलोक की शक्तियों को अभिभूत कर उन्हें पृथ्वी पर स्थित यज्ञ-स्थल पर प्रकट होने को बाध्य कर देती हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ; अश्वमेघ यज्ञ; सहस्त्र शत चण्डी यज्ञ और विश्व शांति यज्ञ जैसे अनुष्ठान हमारे साहित्य में प्रचुरता से वर्णित है। अर्थात् वैदिक ऋषि विज्ञान ही नहीं अपितु परा-विज्ञान के ज्ञाता थे। श्री अरविन्द अपनी 'माता' पुस्तक में लिखते हैं कि केवल दो शक्तियाँ हैं जो जो अपनी परिपूर्णता में कुछ भी सम्पन्न कर सकने में सक्षम है। नीचे से मानव की अभीप्सा और ऊपर से भागवत कृपा इनके संयोजन से सब कुछ संभव है। सावित्री महाकाव्य में भी उनके वचन हैं:

"All can be done if the God touch is There"

-Shri Aurobindo

यही संभवत: याज्ञिक क्रियाओं का गुप्त रहस्य है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो वेद हमें बतलाते हैं वह है "संतुलन"। मानव को जो कुछ भी संसार में उपलब है वह सृष्टिकर्त्ता की देन हैं। हम उसके ट्रस्टी हैं अत: अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् हमें शेष उसी परम को लौटा देना चाहिए। यह बात मात्र उत्पादों पर ही लागू नहीं होती, अपितु हमें बदलती है कि प्रकृति व पर्यावरण का दोहन नहीं; किन्तु उपयुक्त प्रयोग ही हमारी अधिकार-सीमा में है। प्रकृति का अपना 'Echo-system' है उसके संतुलन में ही मानव कल्याण है।

वैदिक ऋषियों की परम्परा के अनुसार बालक जगदीशचन्द्र की माँ ने उन्हें रात्रि को तुलसीपत्र तोड़ने से यह कहकर मना किया कि रात्रि में पौधे सो जाते हैं।इस कथन ने बाल हृदय को महान वनस्पतिशास्त्री 'सर जगदीश चन्द्रबसु' बना दिया। कलकत्ता में उनकी प्रयोगशाला में संवाद, भय एवं प्रेम के भावों का प्रायोगिक दिग्दर्शन हमें चमत्कृत कर देता है। जापानी लोग 'जंगल स्नान' करते हैं जिसे वे 'शिनरिन- योक्' कहते हैं। शोध के अनुसार इससे रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि तथा तनाव कम होता है। भगवान् धनवन्तरि की लोक कल्याण भावना ने उनके और जड़ी बूटियों के बीच ऐसा साम्य स्थापित किया कि वे अपने औषधीयगुणों का वर्णन स्वेच्छा से करती तथा वे उसे आत्मसात कर उपचार करते। ऐसे संवाद का एक आधुनिक उदाहरण 1968 में ऑरोविल में मातृ मंदिर निर्माण योजना में एक विशाल वटवृक्ष के काटने की योजना को लेकर था। उस वृक्ष ने सूक्ष्म में अरविंदाश्रम की अधिष्ठात्री श्रीमाँ से 'अभयदान' की प्रार्थना की; जो श्रीमाँ ने स्वीकारी और आज उसीकी शीतलछाया में बैठकर शान्ति के अतिरिक्त प्रेम के प्रकम्पन असंख्य आगन्तुकों में कृतज्ञता का भाव उत्पन्न करते हैं।

पाँच अक्टूबर को इसी वर्ष शनिवार के दिन उच्चतमन्यायालय में श्रीराम मंदिर केस पर एक विलक्षण घटना सुनने को मिली। दृश्य था जन्म भूमि के पक्ष में वादी के रूप में उपस्थित धर्मचक्रवर्ती, तुलसीपीठ के संस्थापक, पद्मविभूषण, श्रीरामभद्राचार्य जी से बेंच के एक मुसलमान न्यायधीश ने चुभता सा सवाल पूंछा- "आप लोग हर बात में वेदों से मांगते हैं.....,तो क्या वेदों ही प्रमाण दे सकते हैं कि श्रीराम का जन्म अयोध्या के उस स्थल पर ही हुआ था?"

प्रज्ञा-चक्षु रामभद्राचार्य जी ने बिना एक पल भी गंवाये कहा "दे सकता हूँ महोदय"....... और उन्होंने ऋगवेद की जैमिनीय संहिता से उद्धरण देना शुरू किया जिसमें सरयू नदी के स्थान विशेष से दिशा और दूरी का सटीक ब्यौरा देते हुए श्रीराम-जन्मभूमि की स्थिति बताई गई है।

कोर्ट के आदेश से जैमिनीय संहिता मंगाई गई....... और उसमें जगद्गुरू जी द्वारा निर्दिष्ट संख्या को खोलकर देखा गया और समस्त विवरण सही पाए गए.......जिस स्थान पर श्रीराम जन्मभूमि की स्थिति बताई गई है.......विवादित स्थल ठीक उसी स्थान पर है।

मुसलमान न्यायाधीश ने स्वीकार किया, "आज मैंने प्रज्ञा का चमत्कार देखा.....एक व्यक्ति जो भौतिक आँखों से रहित हैं, कैसे वेदों और शास्त्रों के विशाल वाङ्गमय से उद्धरण किये जा रहे थे? यह ईश्वरीय शक्ति नहीं तो और क्या है?"

अब कोई ये मत कहना कि वेद तो श्रीराम के जन्म के पहले से अस्तित्व में थे......उसमे श्रीराम का उल्लेख कैसे हो सकता है? वेदों के मंत्रद्दष्टा ऋषि त्रिकालज्ञ थे-भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों का ज्ञान रखते थे।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥

वेद रहस्य को हृदयंगम करने के लिए हमें श्रीअरविन्द के अनुसार 'पात्रता' विकसित करनी होगी जो हमारे शरीर में ही विराजित परमपिता के अंश की कृपा से संभव है। अपनी मांत्रिक-रचना 'सावित्री' के उद्धरण से अपनी वाणी को विराम देना चाहता हूँ जिसमें 'Vedic cycle' का सुक्ष्म विश्लेषण निहित है:

"There in a hidden chamber closed and mute
Are kept the record graphs of the cosmic scribe
And then the tables of the sacred law,
Then is the Book of Being's index page;
The text and glossary of the Vedic truth
Are there; the vhythms and metves of the stavs
Significant of the movements of our fate:
The symbol power of number and of form,

And the secret code of the history of the world
And Nature's correspondence with the soul
And written in the mystic heart of Life.

SAVITRI

- *Sri Aurbindo*

ऊँ शान्ति ऊँ

(के. के. खरे)

मैली चुनरी

मैली चुनरी हमार।
धोवन हार करतार॥
लख चौरासी भुगत के आयो।
चुनरी न धुली हमार॥
राम राय चुनरी के धुवैया।
राम लगावें पार॥

तू

तू को इतना मिटा कि तू न रहे।
और तुझमें दुई, की बू न रहे॥ 1॥
जुस्तजू' है कि जुस्तजू न रहे॥2॥
आरजू' भी विसाले-पर्दा है।
आरजू है कि आरजू न रहे॥3॥

राष्ट्र-इकाई का निर्माण

हमने इस विशाल क्रांतिकारी आंदोलन का आंतरिक औचित्य देख लिया है । केवल अपने अस्तित्व को लिए न तो राष्ट्र-काई निर्मित ही होती है और न ही वह बनी रहती है । उसका आशय होता है मानव समुदाय के एक ऐसे बृहत्तर साँचे का निर्माण करना जिसमें समूची जाति-केवल वर्ग और व्यक्ति नहीं – अपने पूर्ण मानव विकास की ओर बढ़ सके -1 जब तक निर्माण - कार्य के लिए श्रम करना पड़े , यह बृहत्तर विकास रुक सकता है और सत्ता एवं व्यवस्था को प्रथम स्थान दिया जा सकता है , पर जब समुदाय को अपने अस्तित्व का निश्चय हो जाय और वह एक आंतरिक विस्तार की आवश्यकता अनुभव करने लगे तो इसका कुछ प्रयोजन नहीं रहेगा । तब इन पुराने बन्धनों को तोड़ना पड़ेगा, निर्माण के साधनों को विकास मार्ग में बाधा समझकर त्याग देना होगा । तब स्वतंत्रता जाति का प्रेरक शब्द हो जायगी । जो धर्म - संघ की स्वतंत्रता तथा नये नैतिक और सामाजिक विकास को दबाता था उसे अपने निरंकुश अधिकार से च्युत कर देना होगा जिससे मनुष्य मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप में स्वतंत्र हो सके । शासक और कुलीनवर्ग के –एकाधिकार का नाश करना होगा जिससे सब लोग राष्ट्रीय शक्ति , समृद्धि और गति विधि में- अपना भाग ले सके ।और अन्त में तो मध्यवर्ग के पूँजीवाद को भी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था स्वीकार करने के लिए प्रेरित या विवश करना पड़ेगा जिसमें कष्ट , दारिद्रय और शोषण नहीं होंगे तथा समाज की धन सम्पति का उन सब द्वारा समान रूप से उपयोग किया जायेगा जो उसे अर्जित करने में सहायक होते है । सब क्षेत्रों में मनुष्यों के अपने स्वत्व को प्राप्त करना होगा , अपने अन्दर के मनुष्यत्व की महत्ता और स्वतंत्रता को समझना तथा अपनी पूरी क्षमता के अनुसार कार्य करना होगा ।

कारण , स्वतंत्रता ही पर्याप्त नहीं है , न्याय भी आवश्यक है और इसकी माँग प्रबल हो रही है , समानता की पुकार उठ रही है । निश्चय ही पूर्ण समानता का इस संसार में अस्तित्व नहीं हैं ; पर इस शब्द का उद्देश्य पुरानी सामाजिक व्यवस्था की अन्याय युक्त और अनावश्यक असमानताओ का विरोध करना था। न्याययुक्त सामाजिक व्यवस्था के अन्दर सबको समान अवसर प्राप्त होगा , सभी को अपनी मानसिक शक्तियों की वृद्धि तथा उनके प्रयोग के लिए समान शिक्षा दी जायगी और जहाँ तक

हो सकेगा सामुदायिक जीवन के लाभों में सबका बराबर हिस्सा होगा; यह सब उन लोगों को अधिकारपूर्वक मिलेगा जो अपनी क्षमताओं का प्रयोग करके इस जीवन को स्थायी , शक्तिशाली और उन्नत करने में सहायता पहुँचायेंगे । जैसा कि हम देख चुके यह अवश्यकता स्वतंत्र सहकारिता के एक ऐसे आदर्श का रूप धारण कर सकती थी जिसे जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करनेवाली दूरदर्शी और उदार केन्द्रीय सत्ता माग दिखाती और सहायता पहुँचाती , पर यह वास्तव में पूर्ण और समर्थ राज्य के पुराने विचार की ओर लौट पड़ी है जो राजतंत्रीय , धार्मिक और कुलीन नहीं वरन् लौकिक , जनतंत्रीय , और सामाजिक है , इसमें समानता और समुदाय की योग्यता की आवश्यकता के आगे स्वतंत्रता का बलिदान कर दिया गया है । लौटने की इस क्रिया के मनोवैज्ञानिक कारणों पर हम अभी विचार नहीं करेंगे । शायद स्वतंत्रता और समानता में, स्वतंत्रता और अधिकार में तथा स्वतंत्रता और संगठित योग्यता में पूर्णतया सन्तोषजनक मेल तब तक कभी भी नहीं हो सकता , जब तक मनुष्य , व्यष्टि तथा समष्टि रूप में , अहंभाव के सहारे जीता है , जब तक उसमें महान आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन नहीं आ जाता और सामुदायिक संसर्गमात्र से ऊपर उठकर वह तीसरे आदर्श तक नहीं पहुँच जाता जिसे । स्वतंत्रता और समानता के प्रेरक शब्दों के साथ जोड़ देने के लिए किसी अस्पष्ट अनुभूति ने फ्रांस के क्रांतिकारी विचारकों को उकसाया था । यह आदर्श भ्रात भाव का -आदर्श है, यदि काम भावुक तथा अधिक सच्चे शब्दों में कहें तो एक अन्तरीय एकता का आदर्श है और तीनों में महान है , यद्यपि यह अभी तक लोगों की जिह्वा पर एक कोरा शब्दमात्र है । इसे किसी सामाजिक , राजनीनिक अथवा धार्मिक साधन ने अब तक न तो उत्पन्न किया है और न ही वह इसे उत्पन्न कर सकता है; इसे मनुष्य की आत्मा में जन्म लेना होगा और अन्दर की गुप्त और दिव्य गहराइयों में से प्रादुर्भूत होना होगा ।

- श्रीअरविन्द

शान्ति

कम-से-कम दोबार प्रतिदिन, नीरवता प्राप्त करने का अभ्यास करना सर्वदा ही बहुत अच्छा है, परन्तु वह सच्ची नीरवता होनी चाहिए, केवल बातचीत बन्द करना ही नहीं होना चाहिए।

शान्ति और स्थिरता बीमारी के महान् उपचार हैं। जब तुम अपने कोषाणुओं में शान्ति ला सको, तुम निरोगी हो जाते हो। सत्ता में भागवत उपस्थिति का पहला चिह्न है शान्ति। शान्ति एक ऐसी निश्चल-नीरवता है जो ऐसी चीज़ में गंभीर रूप से उतर जाती है जो बहुत सकारात्मक होती है, जो प्रायः तरंग हीन शान्ति आनन्द बन जाती है।

एक अर्थ में यह तमस और शम (शान्ति) एक दूसरे के चित और पटयानी प्रतिरूप हैं। उच्चतर प्रकृति शान्ति में आराम पाती है और निम्नतर उस आराम को ऊर्जा के छितराव में पाने का प्रयास करती है, फल स्वरूप वह अवचेत ना यानी तमस जा लौटती है।

उच्चतर आध्यात्मिक चेतना की शान्ति, 'शक्ति' प्रकाश 'आनन्द' सभी ऊपर पर दे के पीछे विद्यमान हैं। इन को नीचे उतारने के लिए इनके प्रति कुछ उद्घाटन आवश्यक होता है-और इनके अवतरण के लिए उत्तम अवस्थाएँ हैं-अपने मन को शान्त रखना और साथ ही उतरते हुए प्रभाव के प्रति एक प्रशस्तसं केन्द्रित समर्पण की भावना रखना।

श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की दृष्टि में भारत वर्ष का स्वरूप और उसके चेतनात्मक आधार

-श्रीमती गीता वर्मा

भारत वर्ष की वर्तमान चेतना को देखते हुये प्रस्तुत विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि राजनीतिक स्वतन्त्रता के पूर्व इस राष्ट्र की चेतना के प्रति लोगों की जो अपेक्षायें थीं और जिसके लिए बहुत पहले से लम्बे वादे किये जा रहे थे उसके स्वरूप में पतितोन्मुख परिवर्तन हुआ है। इस शताब्दी के पांचवे दशक में जब कई क्रान्तिकारी व्यक्तियों और स्वतन्त्रता सेनानियों को श्रीअरविन्द ने गुप्त योजनायें बनाने के स्थान पर योग आरम्भ करने की सलाह दी तो लोग चौंके। उन्हें श्रीअरविन्द की दूरदर्शी दिव्य दृष्टि पर यह विश्वास नहीं हो रहा था कि स्वतन्त्रता के बाद भारत की चेतना में जो स्खलन होगा उसे रोकने और राष्ट्र की चेतना को फिर से ऊर्ध्वमुखी बनाने के

लिए योग ही एक मात्र उपाय होगा। ठीक इसी प्रकार श्रीमाँ ने भी साधना के मार्ग को लोगों के लिये प्रशस्त करते हुए चाहा था कि भारतवासी अर्जित अमूल्य स्वतंत्रता को भारतीय संस्कृति के अनुरूप सुरक्षित रखने में सक्षम हों। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्रीमाँ ने श्रीअरविन्द आश्रम से प्रकाशित एक विज्ञप्ति में कहा था। भारत की समस्या स्वाधीनता नही है।' भारत अवश्य स्वतंत्रहोगा । ऊपरी लोकों से स्वतंत्रता का आदेश जारी हो चुका है। बस उसके यहाँ कार्यान्वित होने की देर हैं । मैंने १९२० में देखा था और श्रीअरविन्द से कहा था कि भारतीय स्वाधीन होने के बाद क्या करेंगे। कहीं वे निम्न प्रवृत्तियों के शिकार होकर इतने परिश्रम से प्राप्त किये गये फल को बिगाड़ न दें। '

सचमुच में श्रीमाँ की यह आशंका सही सिद्ध हो चुकी है और इस राष्ट्र की चेतना जिस चौराहे की दूकान पर सौदा कर रही है उसने इस देश की संस्कृति और मानव मूल्यों को झकझोर कर राष्ट्र की नींव को हिला दिया है। 15 अगस्त, 1947 को भारत माँ की प्रार्थना करते हुए वे कहती हैं-

माँ हमारी भारत की आत्मशक्ति है, हे जननी, तूने अत्यन्त अवसाद के दिनों में भी, यहाँ तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी , तुझे अस्वीकार कर दिया तब भी तूने उनका साथ नही छोड़ा। हे माँ, आज इस महान घड़ी में जबकि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषाकाल में तेरे मुख- मंडल पर ज्योति पड़ रही है , हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। ...हमें पथ दिखा कि जिस से हम सर्वदा महान आदर्शो के पक्ष में ही खड़े हों और आध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखा सकें।"

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जब महात्मा गाँधी और देश के अन्य महान नेतागण राजनीतिक आजादी की लड़ाई लड़ने में व्यस्त थे , श्रीअरविन्द और श्रीमाँ भारत को अन्य क्षेत्रों में मुक्त करने और उसकी चेतना को सही आयाम देने के प्रयास में बन्द चहारदीवारी के भीतर काम कर रहे थे। स्वतन्त्रता पर आधारित अरमानों के साथ गाँधी युग समाप्त हो चुका है। युग- अब लोगों के सामने यह प्रश्न मुंह बाये खड़ा है कि आखिर जिन गाँधीयन सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के पीछे जो लाखों -करोड़ों लोग भाग रहे थे आज वही उन मूल्यों को मिटानेवाली भीड़ में क्यों शामिल हो रहे हैं। उस गाँधीवाद का क्या हुआ जिसे सरकार लाख कोशिश करने के बावजूद पुनर्जीवित नहीं कर पा रही है। आखिर ऐसा कुछ क्या हुआ कि देश रास्ते से भटका जा रहा है और आजादी की भारीभरकम सालगिरहों , राष्ट्रीय काँग्रेस की खर्चीली जन्मशताब्दियों , गाँधी दिवस के हजारों जलसों , फिल्म प्रदर्शनों , सरकारी तथा गैर अन्धा सरकारी- धुन्ध रैलियों और पद – यात्राओं के बावजूद यह देश अहिंसा और उसके प्रतिपादक राष्ट्रपिता को भूलता जा रहा है ?

इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के लिए श्रीअरविन्द पौर श्रीमाँ का भारतीय राष्ट को श्रीअरविन्द लोग जो और है रहा हो साबित सामयिक अत्यन्त दर्शन को विचारों उनके भी उनमें थे बैठे दे संज्ञा को राजीनितज्ञ पलायनवादी अ की जाननेब तीव्र जिज्ञासा पैदा हो रही है। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध का विषय और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

एक संध्याकालीन में वार्ता में किसी शिष्य ने श्रीअरविन्द से 1623में पूछा था कि क्या यह सही है कि अहिंसा मनुष्य का शुद्धिकरण करती है जैसी कि महात्मा गाँधी की मान्यता है। श्रीअरविन्द का उत्तर यह था कि अहिंसावादी की जो शक्ति यातना भोगने से पैदा होती है उसे गाँधीजी आध्यात्मिक शक्ति मानने की भूल करते है और इसलिये उसे शुद्धीकरण का हेतु कहते हैं। सही बात यह है कि अपने-आपको यातना सहने के लिए प्रस्तुत करने पर मनुष्य में प्राणिक का शक्ति(कसम्वेदनाम अर्थात)आविर्भाव होता है और उसका प्राणिक व्यक्तित्व अधिक सबल हो जाता है। लेकिन जब इस प्रकार की यातना का भूक्तभोगी व्यक्ति स्वयं सत्ता में आता है या किसी प्रकार की राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर लेता है तो वह अत्यधिक उत्पीड़क हो जाता हैं। इसी प्रकार जब कोई सताया गया राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है तो उसके नेता बहुत बड़े उत्पीड़क पोर भ्रष्टाचारी हो जाते हैं । उन्होंने आगे बताया कि सत्याग्रह का एक पक्षीय व्यवहार सत्याग्रही के भीतर की हिंसा भावना का रूपान्तर नहीं करता बल्कि उसे दबा देता है जो बाद में बेईमानी , प्रौर मिथ्याचार के रूप में उभरता है। सही शुद्धीकरण तो प्रवृत्तियों के रूपान्तर द्वारा ही संभव है, राजनीतिक अहिंसा या सत्याग्रह द्वारा नहीं । "

श्रीअरविन्द के ये विचार सचमुच में आज कितने सही सिद्ध चुके हैं? महात्मा गाँधी और मुट्ठीभर उन के अनुयायियों के जाते हो उनके अहिंसात्मक धरनों व सत्याग्रहों का जो रूप हमारे सामने प्रकट हुआ है वह किसी से छिपा नहीं है तथा उनके आन्दोलन को चलाने वाले कार्य -कर्तामों का जो चारित्रिक हनन हुआ है उससे यह कहने में भी संकोच होता है कि यह गाँधी का देश है। श्रीअरविन्द के इस विश्लेषण से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अहिंसा और सत्याग्रह के द्वारा देश में जिस प्रचण्ड शक्ति का आविर्भाव हुआ

था वह आध्यात्मिक नहीं बल्कि प्राणिक शक्ति थी। प्राणिक शक्ति का प्रभाव भौतिक शक्ति की तरह सामयिक होता है और वह हुआ लेकिन आध्या त्मिक शक्ति का प्रभाव चिरन्तन होता है। श्रीअरविन्द इसलिए इस राष्ट्र के नवनिर्माण में विशुद्ध आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे और इसके लिए एक लम्बे समय तक कठिन साधना की आवश्यकता होती है। देश की आजादी एक सामयिक लक्ष्य था जिसकी पूर्ति धार्मिक राष्ट्रवाद की तीव्र लहर ने कर दिया लेकिन सत्ता हस्तगत करते ही यह प्राणिक शक्ति अपने असली रूप में आ गई और त्याग व बलिदान की मूर्त्ति माने जानेवाले बड़े-बड़े कितने ही राजनीतिक नेता आजादी के बाद की लूट में शामिल हो गये। उन्होंने जो सम्पदा अर्जित की और सत्ता का जो दुर्ग अपने चारों ओर निर्मित किया उससे वर्तमान राज-व्यवस्था निस्सहाय हो चुकी है ।

श्रीअरविन्द ने सचेत किया था कि भारत में पश्चिम की तरह का राजनितिक तंत्र नहीं चल सकता – चाहे वह संसदीय लोकतंत्र हो और चाहे दो दलोंवाला ब्रिटिश या अमेरिकन तंत्र। उनकी सम्पति में पश्चिमी लोकतंत्र या कोई भी तंत्र यहाँ तब तक नहीं चल सकता जब तक कि उसका भारतीयकरण नहीं कर दिया जाता । भारत में राजनीतिक विकास की प्रक्रिया पश्चिम की तरह नहीं रही है। यहाँ का राजनीतिक तंत्र आध्यात्मिक व सांस्कृतिक उद्देश्यों को लक्ष्य मानकर साधन के रूप में जब कार्यरत होता था तभी उसे लोगों का सहयोग मिलता था और स्थायित्व प्राप्त करता था । जीवन के इस लक्ष्य को हटा देने के बाद भारत में कुछ भी भारतीय नहीं रह जाता। कर्तव्यप्रधान जीवन यहाँ इसीलिए में व्यवस्था –उदार राजतंत्र अधिक सफल रहे हैं। अधिकार प्रधान पश्चिमी राजनीति में वही तंत्र चल सकते हैं जिनमें व्यक्तिगत या सामूहिक हितों को पूरा करने का वादा हो । और जनता पूरा कराने के लिए सदा संघर्षरत हो। श्रीअरविन्द ने इसीलिए इस शताब्दी के प्रथम दशक में ही कहा था कि भारत में एक आध्यात्मिक राजतत्र अधिक उपयुक्त होगा राज भूमिका की राजा जिसमें राजतंत्र ऐसा –जैसी प्रमुखहो और लोग उसके व्यक्तित्व में दैवीशक्ति की अनुभुति कर सकें। उन्होंने यह भी चेतावनी दी थी कि ब्रिटेन व अमेरिका की तरह भारत में द्विदलीय शासन व्यवस्था नहीं चलेगी क्योंकि यहाँ के लोग विचारों की किसी बँधी - बँधीई प्रणाली में अपने को कैद नहीं कर सकते।”

भारतीय राष्ट्र के वास्तबिकस्व रूप में और उसके सुदृढ़ चेतनात्मक आधारों की खोज करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है । श्रीअरविंद ऐसा नहीं मानते कि भारत को भारत बनानेवाली शक्ति का ऐसे संकटपूर्ण समयमें बिल्कुल ही ह्रास हो गया है। ब्रिटिश साम्राज्य के शिकंजों के भीतर भी भारतीय राष्ट्र की आत्मा मरी नहीं , वह कभी झुकी नहीं पर बार बार अच्छादित अवश्य हुई। वे कहते है :

‘युगों-युगों का भारत मृत्त नहीं हुआ है और न उसने अपनी अन्तिम सर्जनकारी वाणी ही उच्चारित की है । वह जीवित है और उसे अब भी अपने लिए तथा मानवजाति के लिए बहुत कुछ करना है ।’

सन् 1961 में एक भेंट के समय सत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी का ध्यान श्रीमाँ ने इस बात की ओर दिलाया था कि भारत अपने दैवनिर्दिष्ट कार्य की ओर बढ़ने के बजाय पश्चिम की नकल में उलझ चुका है । उन्होंने यह सलाह दी थी कि-

भारत को-

(1) जगत् के लिए कार्य करना चाहिये। इस प्रकार ही वह संसार में अपने सही स्थान को प्राप्त करेगा।

(2) विभाजन के समय से शासन चलाने की परम्परा चली रही है । अब समय आ गया है जब हमें पारस्परिक सद्भाव और सहयोग द्वारा शासन करना चाहिये।

(3) और सहयोग के लिए व्यक्ति का मूल्य किसी राज- नीतिक दल की अपेक्षा कहीं अधिक है।

(4) राजनीति की महानता किसी एक दल पर निर्भर नही करती बल्कि सभी दलों की सामूहिक विजय पर निर्भर करती है ।

श्रीअरविन्द के विचारों में ‘राष्ट्र” शब्द का अर्थ भारतीयों के लिए वही नहीं है जो पश्चिमी देशों के लिए है। पश्चिम के लोगों के लिए ‘राष्ट्र’ एक राजनीतिक चेतना का प्रतीक है जबकि भारत के लिए वह एक आध्यात्मिक शक्ति है। उन्होंने बताया कि भारत में राष्ट्र विचार राजनीतिक अर्थ में कभी नहीं रहा लेकिन सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से हमारे पास हमेशा से राष्ट्र रहा है। पश्चिमी अर्थ में राष्ट्र का अर्थ आक्रमण करने ओर अपनी सुरक्षा करने के लिए सैनिक है होता से संगठन –शक्ति -1 जिसके द्वारा सत्ता का केन्द्रीयकरण किया जा सके। लेकिन उन्होंने चेतावनी देते हुए 1626 में कहा था कि यदि राष्ट्र के इस

अर्थ को बदला नहीं गया तो इसके परिणाम भयकर होगे और मानवता के लिए कोई आशा शेष न रहेगी । “

तब प्रश्न पैदा होता है कि भारतीय राष्ट्र का सही स्वरूप क्या हो और उसके चेतनात्मक आधारो को कैसे गढ़ा जाय। श्रीआरविन्द का उत्तर यह है कि “ भारतीय राष्ट्र का प्राधार उसका ‘ स्व ‘ है । प्रत्येक राष्ट्र की अपनी आत्म होती है। भारत को अपने आत्मा की खोज करके सारे मानवीय संगठनों और राजढाँचे को इस राष्ट्रात्मा के ऊपर खड़ा करना चाहिये। में मन्दिर भवानी”: हैं लिखते वे वह कोई क्या राष्ट्र”? हमारी मातृभूमि क्या है ? वह कोई भूखण्ड मात्र नहीं है। वाग्विलास नहीं है और न कोरी कल्पना है। वह तो महाशक्ति है व राष्ट्र का निर्माण करनेवाली कोटि-कोटि जनता के व्यष्टि की शक्तियों का समष्टिगत रूप है।” इसी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी अभिलेख में उन्होंने अन्यन्त्र लिखा है-‘ भारत जननी हमारी माँ है । वह कहती है स्थित में संसार में”- कलनि से शाश्वत स्थित अन्दर तुम्हारे और शाश्वतने वाली शक्ति अनन्त धारा हूँ। मैं विश्व की माँ हूँ, सभी जगतों की मां हूँ, और तुम लोगों के लिए जो इस पवित्र आर्यभूमि की मिट्टी से बने हो , यहां की धूप और हवा में पले हो मैं भारतीभवानी हूँ। मैं भारत माता हूँ । “

भारतीय संस्कृति के प्राधार में इस राष्ट्र की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

एक ही की आत्मा हुई होती विकसित अन्दर के जानि मानव राष्ट्र प्रत्येक” औ है शक्ति विशिष्टर वह जिस शक्ति का मूर्त्ति रूप है, उसी के सहारे वह जीवित रहता है । भारतवर्ष भारत शक्ति है।

“इसी भाव में श्रीमाताजी कहती हैं— ‘व्यक्ति की तरह ही राष्ट्र का भी चेत्यपुरुष होता है । यही उसकी सही आत्मा व है जो उसके प्रारब्ध को पीछे से गढती है ।”

श्रीअरविन्द को ज्ञात था कि अहिंसावादी सत्याग्रही-चेतना राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद ज्यों ही समाप्त होगी देश में सात्विक अकाल का चेतना – जायेगा पड़ । राष्ट्र निम्न प्रवृत्तियों के कोड़ों से हाँका जायेगा। इस स्थिति से उबरने के लिए उन्होंने एक ऐसे आधार की तैयारी शुरू कर दी थी जो इन प्रवृत्तियों का रूपान्तर कर सके। उन्होंने अपनी कठिन साधना द्वारा उस सत्य का अवतरण करा दिया जिसे उपनिषदों में ‘विज्ञानमय’ चेतना कहा गया है। श्रीअरविन्द ने इसे ‘अतिमानस’ का नाम दिया है। उनकी यह खोज थी कि यदि अतिमानस की चेतना को मनप्रधान पृथ्वी की चेतना में उतार दिया जाय और कुछ लोग इसे ग्रहण कर सकने में सफल हो जायें तो मानव नया का चेतनाआधार आधार तैयार हो सकता है। श्रीमाताजी ने मनुष्य के भीतर अपनी साधना द्वारा उस चैत्य-केन्द्र को स्थापित करने का प्रयास किया जो अतिमानस को ग्रहण कर सके। ‘अतिमानस” को त्रिगुणात्मक जगत में नीचे उतारने और मानव चैत्य द्वारा उसे ग्रहण कराने-इस दोहरे कार्य के लिए की गई साधना का नाम ही श्रीअरविन्द है योग -1और जिन लोगों के माध्यम से चेतना की यह नर्सरी तैयार की गई उसी का नाम ‘ श्रीअरविन्द आश्रम ‘ है जो मोक्ष के आकांक्षी संसार के सभी अश्राम से भिन्न मानव एक ही चेतना –श्रीअरविन्द । है प्रयोगशाला_द और श्रीमाँ को विश्वास था कि अनेको उत्थान पतनों के बाद भी भारत की मिट्टी में उच्चतर चेतना के विकास की संभावनाएँ विद्यमान है। इसलिए सबसे पहले इन प्रयोगशालानों का विकास भारत में ही किया जाना चाहिये । इन प्रयोगशालानों में तपे लोग ही भारत की राष्ट्रात्मा की अनुभूति राजनीतिक करेंगे । राजनितिक कुचक्रों की मार से उसे बचायेंगे और जीवन में मन व प्राण के राज्य के स्थान पर चैत्य का शासन स्थापित कर मानवजाति को एक और महाप्रलय से बचायेगे। यही भारतीय राष्ट्र का चेतनात्मक आधार होगा।

लेकिन यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि जन सामान्य जो इस राष्ट्र का वर्तमान प्रहरी है सिने संस्कृति और सिने राजनीति से ऊपर उठकर इस उर्ध्व चेतना का क्या कभी गुणग्राही बन सकेगा? श्रीमाँ और श्रीअरविन्द का उत्तर है कि सृष्टि के विकास क्रम में मनुष्य का मन व प्राण की चेतना से ऊपर उठना दैव निर्दिष्ट है। किसी चमत्कार की आशा किये बिना राष्ट्र की चेतना को नये सिरे से गढ़ने के लिए तैयार होना होगा तथा प्रममयी अतिमानस की शक्ति के प्रति , जिसे मानवता के लिए श्रीअरविन्द ने पृथ्वी की चेतना में उतार दिया है सभी राष्ट्रप्रेमियों को खलना होगा ।

सन्तों का जीवन

संत तो खुशबू की भाँति होते हैं समय व स्थान के बन्धनों से स्वतंत्र। कबीर हुए बनारस में किन्तु उनकी वाणी सारे भारत का मार्गदर्शन करती आ रही है। गुरुग्रन्थ साहब में भी उनके पद संग्रहित हैं जहाँ उनके पद में धुला बनारसी अवधी का रंग पंजाबी बसंती रंग में यूँ निखर कर आता है:-

कबिरा रुक्खी-सुख्खी खाय के
ते ठंडा पाणी पी।
ना वेख पराइयाँ चोपणियाँ
ते नां तरसावीं जी॥

इसी प्रकार जब उपवास व कठोर तपस्या करने वालों को भी प्रभुप्राप्ति में सफल न होते देखा तो कबीर ने उन्हें मध्यम मार्ग बड़ी सहजता से दिखा दिया:-

कबिरा क्षुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकरा डारि के, भगती करो निसंग॥

उद्देश्य तो प्रभु के प्रेम में लीन होना है न कि बढ़िया खाद्यपदार्थों का ध्यान और शरीर को कष्ट देना, अत: मध्यम मार्ग ही सर्वोत्तम पथ है।

-सूरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'

समता

समता का अर्थ है अचच्लता और स्थिर मन तथा प्राण:, इसका अर्थ है घटित होने वाली या कही गयी या तुम्हारे प्रति की गयी वस्तुओं से अछूता रहना, विचलित न होना, बल्कि उनकी ओर सीधी नज़र से देखना, व्यक्तिगत भावना द्वारा उत्पन्न विकृतियों से मुक्त रहना, और उस चीज़ को समझने का प्रयास करना जो उसके पीछे विद्यमान है, यह समझना कि वे क्यों घटित होती हैं, उनसे क्या शिक्षा लेनी चाहिए, हमारे अन्दर ऐसी कौन–सी चीज़ है जिसके विरुद्ध वे फेंकी गयी हैं और उनसे कौन-सा आन्तरिक लाभ उठाया जा सकता है या उनकी सहायता से कौन-सी प्रगति की जा सकती है इसका अर्थ है प्राणिक क्रियाओं के ऊपर आत्म-प्रभुत्व,-क्रोध, असहिष्णुता और गर्व तथा साथ ही कामना और अन्य चीजें-इन्हें अपनी भावनात्मक सत्ता पर अधिकार नहीं जमाने देना और आन्तरिक शान्ति को भंग नहीं करने देना, जल्दबाज़ी में और इन चीज़ों के द्वारा आवेग में आकर न बोलना और न ही कार्य करना, हमेशा आत्मा की एक स्थिर आन्तर स्थिति में रहकर कार्य करना और बोलना। इस समता को पूर्णता:, पूर्ण मात्रा में प्राप्त करना आसान नहीं है, मैंने देखा है कि इसी चीज़ के कारण जीवन में इस प्रकार की आधी से अधिक अनपेक्षित घटनाएँ घटती हैं। परन्तु साधारण जीवन में व्यक्तिगत भावना तथा अतिसंवेदनशीलता हमेशा ही मानव-स्वाभाव का अंग बनी रहती हैं और आत्मरक्षा के लिए आवश्यक हो सकती हैं, यद्यपि मेरी राय मे, वहाँ भी मनुष्यों और वस्तुओं के प्रति एक प्रबल, उदार और समता का मनोभाव रखना आत्मरक्षा का अधिक अच्छा उपाय सिद्ध होगा। परन्तु किसी साधक के लिए, उनके पार चले जाना और आत्मा की स्थिर शक्ति में कहीं अधिक निवास करना उसकी प्रगति का एक आवश्यक अंग है।

कहानी

ऋषि उत्तुंग-इन्द्र का अमृत

ऋषि उत्तुंग अपनी तपस्या से ईश्वर को प्रसन्न कर चुके थे। ईश्वर उनके सामने प्रकट हुए और उन्होंने कहा ,क्या मांगते हो? ऋषि ने कहा भला मैं क्या मांगू! मैं बस इतना चाहता हूँ कि मुझे कभी किसी चीज का अभाव ना महसूस हो। ईश्वर सोच में पड़ गए, बोले यह तो नहीं संभव है क्योंकि भाव और अभाव की अनुभूति तो मनुष्य की प्रवृत्ति है, पर मैं तुम्हें यह वर दे सकता हूँ कि तुम जब भी कुछ भी चाहोगे वह तुम्हें तुरंत प्राप्त हो जाए। ऋषि बहुत पहुँचे हुए थे, बहुत तपस्या कर चुके थे। ईश्वर को उन्होंने प्रणाम किया और चले गए। वह इस वरदान को भी भूल चुके थे। एक बार की बात है, ऋषि कहीं जा रहे थे। चलते-चलते वे रेगिस्तान में पहुँच गए। रास्ता बहुत लंबा था। उन्हें प्यास लगी। उन्होंने देखा उनके पास जो पानी था वह भी खत्म हो गया था। अचानक ऋषि को अपना वरदान स्मरण हो आया, उन्होंने प्रभु को याद किया और ध्यान में बैठकर उन्होंने मन ही मन ईश्वर का ध्यान किया और प्रार्थना की, हे ईश्वर! मुझे बहुत प्यास लगी है, काश मुझे थोड़ा पानी मिल जाता, अभी उन्होंने कहा ही था कि कोई पदचाप सुनकर उन्होंने आंखें खोलीं, सामने देखा एक व्यक्ति चमड़े के बैग में पानी लिए चला आ रहा है, उस व्यक्ति ने ऋषि को प्रणाम किया और कहा ऋषिवर! लगता है आप बहुत प्यासे हैं, मेरे पास जल है , कृपया इसे ग्रहण करें और अपनी प्यास बुझालें। ऋषि ने उस व्यक्ति की ओर देखा उनके पूर्व जन्म के संस्कार मन और मस्तिष्क में शोर करने लगे उन्होंने सोचा नीच जाति के व्यक्ति के हाथों जल ग्रहण करने से बेहतर होगा कि मैं प्यासा ही मर जाऊँ।

ऋषि ने जल ग्रहण करने से इंकार कर दिया कहा नहीं मैं तुम्हारा छुआ पानी नहीं पी सकता।

उस व्यक्ति ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा जैसी आपकी इच्छा और ऋषि ने देखा वह तुरंत अंतर्ध्यान हो गया। ऋषि आश्चर्य में पड़ गए तभी ईश्वर साक्षात प्रकट हुए और मुस्कुराने लगे। ऋषि ने उनसे शिकायत करते हुए कहा प्रभु यह क्या? मैं इतना प्यासा हूँ मगर आपने जल भिजवाया तो एक अस्पृश्य चमार के हाथों, भला मैं उसके हाथों छुआ पानी कैसे भी सकता हूं ?

ईश्वर मैं गहरी मुस्कान के साथ कहा, कृषिवर! अभी आपको और तपस्या करनी होगी आप अभी तक अपने अंदर समता का भाव नहीं विकसित कर पाए। अब भी आप ऊँच-नीच स्पृश्य -अस्पृश्य पसंद- नापसंद अच्छे बुरे के की मनोवृति से मुक्त नहीं है। आप नहीं जानते कि आपकी प्रार्थना सुनकर मैंने कितनी मुश्किल से देवेंद्र को इस बात के लिए मनाया था कि वे आपके पास केवल जल ही नहीं बल्कि अमृत लेकर आए और आपकी प्यास बुझाने में मदद करें। इंद्र ने मेरी बात स्वीकार तो कर ली किंतु इस शर्त पर कि वे आपके लिए अमृत केवल एक चमार के रूप में ही लेकर जायँगे । वे आए, मगर अफसोस आप अपनी मानसिक संकीर्णता वश उसे ग्रहण नहीं कर सके।

ऋषि ने अपनी कमी को स्वीकार करते हुए आंखें झुका ली, ईश्वर को प्रणाम किया और पुन: तपस्या के लिए चल पड़े। भौतिक और आत्मिक विकास के पथ पर अग्रसर होने के लिए अपने व्यक्तित्व में सर्वांगीण रूप से समता का भाव विकसित करना कितना अनिवार्य है यह कहानी हमें सिखाती है।

हमारा योग और उद्धेश्य

- श्रीअरविन्द

इस योग की मूल प्रक्रिया है सभी वस्तुओं को भगवान के रूप में देखना। साधारणतया ज्ञान की इस प्रकिया में सबसे पहले साधक एक दिव्य निर्व्यक्तिक सत्ता को, सद आत्मा को समस्त देश और काल के अन्दर परिव्याप्त देखता है जिसमें कोई गति, कोई भेद या आकृति नहीं होती, जो 'शान्तम् अलक्षणम्' होती है, जिसमें सभी नाम और रूप ऐसे जान पड़ते हैं मानों उनमें सद्वस्तु का अस्तित्व या तो अत्यंत संदिग्ध या अत्यंत नगण्य रूप में ही है। इस अनुभूति और अन्य सब कुछ माया है, उद्धेश्यहीन और अनिर्वचनी भ्रम है। परन्तु उसके बाद, यदि तुम यहीं रुक न जाओ और अपने-आपको इस निर्व्यव्यक्ति अनुभूति द्वारा सीमित न कर लो तो तुम्हें यह दिखाई देगा कि वही आत्मा सभी सृष्ट वस्तुओं को न केवल अपने अन्दर रखता और धारणा करता है बल्कि उनमें परिव्याप्त और ओतप्रोत भी हो रहा है, और अंत में तुम यह समझ सकोगे कि ये सब नाम और रूप भी ब्रह्म ही हैं। तब तुम अधिकाधिक उस ज्ञान में निवास करने लगोगे जिसे गीता और उपनिषदों ने जीवन का सिद्धान्त माना है। उस समय तुम आत्मा को सब भूतों में और सब भूतों को आत्मा में देखोगे-आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि; तुम सब वस्तुओं को बह्म जानोगे----- सर्वं खल्विदं ब्रह्म। परन्तु इस योग की सर्वोच्च अनुभूति तो वह है जिससे तुम्हें पता चलेगा कि यह सारा जगत एक अनतं दिव्य पुरुष की ही अभिव्यक्ति या लीला है, जिसमें तुम सबके अन्दर निर्व्यक्तिक सद आत्मा को ही नहीं जो व्यक्त सृष्टि का आधार है,- यद्यपि उस ज्ञान को तुम खो नहीं दोगे—जो स्वयं एक साथ ही समस्त व्यक्त और अव्यक्त सत्ता हैं, उसे धारण करते और उसे अतिक्रम करते है-अव्यक्तो व्यक्तात्पर:। कारण सत् आत्मा के परे असत् की निश्चल-नीरवता के परे परात्पर पुरुष हैं—पुरुषो वरेण्य: आदित्यवर्णस्तमस: परस्तात। इसी परात्पर पुरुष ने अपनी सत्ता से इस जगत को रचा है और वही इसमें विराजमान हैं तथा इसे धारण किये हुये हैं अनंत और सांत ईश्वर-रुरिकपीगप से, शिव और नारायण रूप से ,लीलामय श्रीकृष्ण रूप से जो अपने प्रेम से हमें अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपनी प्रभुता के द्वारा हम सबको विवश करते हैं तथा इस बहुविध जगत में आनंद, शक्ति और सौंदर्य का अपना शाश्वत खेल खेलते हैं।

यह जगत उनके सत्, चित्, और आनंद का एक खेलमात्र एक दिन तुम अनुभव करोगे कि है। स्वयं जड़-तत्त्व, वास्तव में जड़ नहीं है, यह कोई स्थूल द्रव्य नहीं है, वरन चेतना का ही एक रूप है,गुण है, सत्ता का गुण इंद्रिय- सामने जड़-रूप में प्रतिभासित होता है। स्वयं इसकी घनता केवल संहति और धृति-रूपी गुणों का समवाय है, सचेतन सत्ता की एक अवस्था है, और कुछ भी नहीं। जड़- प्राण, मन और जो कुछ मन से परे है वह सब श्रीकृष्ण हैं, अनन्तगुण ब्रह्म में निवास करते हैं, शोक और पाप, भय, भ्रम, आंतरिक संघर्ष और दु:ख की सारी

संभावनाएँ बलात् हमारी सत्ता से निकाल बाहर कर दी जाती हैं। तब हमें उपनिषदों के इस सत्य का अनुभव प्राप्त होता है, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन।

"जिसे ब्रह्म का आनन्द प्राप्त हो जाता है उसे जगत में किसी चीज से भय नहीं होता।" और ईशोपनिषद के इस सत्य का अनुभव भी प्राप्त होता है,

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः।
तु त्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥

"जब ज्ञान (विज्ञान) प्राप्त होने पर सभी सृष्ट वस्तुएँ, सब भूत मनुष्य के आत्मा के साथ एक हो जाते हैं तब उसके बाद, जबकि वह उनकी सभी वस्तुओं में एकात्व को देखता है, उसे क्या मोह हो सकता है और क्या शोक?" उस समय तो वह सारा जगत हमें एक दूसरे ही रूप में दिखाई देता है, यह सौंदर्य, श्रेय, ज्योति और आनन्द का सागर प्रतीत होता है, शाश्वत शक्ति और शान्ति के आधार पर होने वाली उल्लासमयी गति मालूम होता है। हम सभी वस्तुओं को शुभ, शिव, मगंल, आनंदमय के रूप में देखते हैं। हम सब प्राणियों के साथ एकात्म हो जाते हैं; सर्वभूतात्म-भूतात्म, और इस अनुभूति के दृढ़ हो जाने पर हम इस योग्य हो जाते हैं कि संस्पर्श के द्वारा, एकत्व के द्वारा, प्रेम के प्रसार के द्वारा इसे दूसरों को भी प्रदान कर सकें तथा इस तरह इस दिव्य अवस्था, ब्राह्मी स्थिति के अपने इस जगत में चारों ओर विकीर्ण होने के केन्द्र बन सके।

हमें केवल सजीव वस्तुओं में ही नहीं, बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी नारायण को देखना चाहिये, शिव को अनुभव करना चाहिये, शक्ति का आलिंगन करना चाहिये। अभी हमारी आँखे जड़ तत्त्व की भावना से अंधी हो रही हैं; पर जब वे परम ज्योति की ओर उन्मुक्त होंगी तब हम देखेंगे कि कोई भी वस्तु निर्जीव नहीं है बल्कि सभी चीजों में व्यक्त या अव्यक्त रूप में, निवर्तित रूप में, गुप्त या प्रकट रूप में, अथवा प्रकटित होने की अवस्था में, न केवल निवर्तित चेतना की वह अवस्था है जिसे हम 'अन्न' कहते हैं, वरन प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द, चित् और सत् भी विद्यमान हैं। सभी वस्तुओं में भगवान का स्वात्मचेतन व्यक्तित्व अधिष्ठित है और अपने गुणों का आनन्द ले रहा है। फूल, फल, मिट्टी, पेड़, धातु आदि सभी चीजों में उनका अपना एक आनन्द होता है जिसे तुम एक दिन अनुभव करोगे, क्योंकि उन सबमें श्रीकृष्ण निवास करते हैं, और वह निवास करते हैं उनमें प्रवेश करके 'प्रविश्य', पर जड़ या भौतिक रूप में नहीं,-- -- क्योंकि यहाँ जड़ या भौतिक कोई चीज हैं ही नहीं और देश तथा काल तो इन्द्रियानुभूति के लिये मात्र एक व्यवस्था या योजना हैं, भगवान की सृष्टिकला का परिप्रेक्षण (perspective) बल्कि चित्-रूप में, अपनी परात्पर सत्ता की दिव्य चेतना के रुप में प्रवेश करके।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किच्ञ्च जगत्।

"यह सारा जगत और इस प्राकृतिक जगत् की प्रत्यक वस्तु ईश्वर के निवास के रूप में सृष्ट हुई है।"

और सभी वस्तुओं और प्राणियों में, सर्वभूतेषु, भगवान को देखना भी पर्याप्त नहीं है; तुम्हें सभी घटनाओं, क्रियाओं और अनुभवों में, अपने में और दूसरों में, जगत भर में भगवान को देखना होगा। इस अनुभूति के लिये दो बातें आवश्यक है; पहली तो यह है कि तुम्हें अपने सभी कर्मों का फल भगवान को सौंप देना होगा और दूसरी यह कि तुम्हें कर्मों को भी उन्हें अर्पण कर देना होगा। इसका अर्थ यह है कि तुम्हें कर्म तो अवश्य करना चाहिये, पर इसलिये नहीं करना चाहिये कि तुम समझते हो कि उसका होना आवश्यक है बल्कि इसीलिए क्योंकि वह तुम्हारा कर्तव्य है, तुम्हारी सत्ता के स्वामी की मांग है और उसे तुम्हें करना ही है, चाहे उसका जो भी फल भगवान तुम्हें क्यों न दें। जो कुछ तुम चाहते हो उसे तुम एक किनारे रख दो और यह जानने की इच्छा करो कि भगवान क्या चाहते हैं; तुम्हारा हृदय, तुम्हारे आवेग तुम्हारी अभ्यासगत धारणाएँ जो कुछ ठीक और आवश्यक समझती हैं उसपर विश्वास मत रखो और इन सबसे ऊपर उठकर, गीता के अर्जुन की तरह, केवल यह जानने की चेष्टा करो कि भगवान ने तुम्हारे लिये क्या उचित और आवश्यक निर्धारित किया है। इस बात पर दृढ़ विश्वास रखो कि जब तुम अपने कर्तव्य-कर्म का ठीक-ठीक पालन करोगे तब उसके फलस्वरूप निश्चित रूप से वही होगा जो उचित और आवश्यक है; और अगर वह फल वह तुम्हारी पसन्द या आशा के अनुरुप न भी हो तो भी उस विश्वास को ज्यों का त्यों बनाये रखो। जो शक्ति इस जगत का परिचालन कर रही है वह कम-से-कम इतनी बुद्धि तो रखती ही है जितनी तुम रखते हो और यह नितांत आवश्यक नहीं कि इस जगत के संबंध में तुमसे सलाह ली जाये या तुमको संतुष्ट किया जाये; स्वयं भगवान इसकी देखभाल कर रहे हैं।

पर यह कर्तव्य कर्म क्या है? इसे बताना बड़ा कठिन है-- गहना कर्मणो गतिः। अधिकांश लोग 'कर्तव्य कर्म' का वही अर्थ करेंगे जो अंगेजी भाषा के 'डयूटी' शब्द से लिया जाता है। यदि उनसे इस शब्द की व्याख्या करने को कहा जाये तो

वे कहेंगे इसका अर्थ है उचित और नीतिसंगत कर्म, वह कर्म जिसे लोग उचित और नीतिसंगत समझते हो अथवा जिसे तुम स्वयं अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार उचित समझते हो अथवा जिसे समाज, राष्ट्र या मानवजाति के हित की दृष्टि से तुम्हें करना पड़ता है। परन्तु जो मनुष्य कर्तव्य-विषयक इस प्रकार के वैयक्तिक या सामाजिक विचारों के बंधन में जकड़ा रहता है,- यद्यपि अज्ञानी मनुष्यों की शोरगुल मचाने वाली कामनाओं को तथा उनके व्यक्तिगत अंहकार को संयत और नियंत्रित करने के लिये ये विचार आवश्यक हैं----वह अवश्य ही एक ऐसा आदमी तो हो सकता है जिसे लोग भला आदमी कहते हैं; पर वह इस योग की पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। वह केवल एक प्रकार के कर्मफल की इच्छा के बदले दूसरे प्रकार के फल की इच्छा रखेगा; वह उन उच्चतर फलों को प्राप्त करने के लिये प्रयास करेगा, सभंवत: अत्यधिक आवेश के साथ भी प्रयास करेगा और उन्हें प्राप्त न कर सकने पर और भी बुरी तरह दुखी होगा। परोपकारी के आवेश से अधिक भंयकर कोई आवेश नहीं होता, किसी प्रकार के अंहकार को जड़-मूल से हिलाना उतना कठिन नहीं होता जिनता कि पुण्य के जमे हुए अंहकार को हिलाना कठिन होता है, क्योंकि यह अपनी दृष्टि में और दुनिया की दृष्टि में भी उचित प्रतीत होता है और इसलिये यह किसी उच्चतर विधान के सामने सिर झुकाने की आवश्यकता को अनुभव नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्य को यदि फल के विषय में शोक न भी हो तो भी वह राजसिक कर्ता की तरह परिश्रम और प्रयास करेगा, संघर्ष करेगा, युद्ध करेगा, व्याकुल होगा और क्लांत होगा, त्रिगुणातीत नहीं होगा, सदा गुणों के बंधनो में रहेगा। इसी प्रकार की वैयक्तिक पुण्य और सामाजिक कर्तव्य की भावना के वशीभूत होकर अर्जुन ने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया था। उसकी युक्तियों के विरुद्ध श्रीकृष्ण ने दो विभिन्न प्रकार के विचार रखे---एक निम्न कोटि का विचार है जो उस मनुष्य के उपयोग के लिये है जो बद्ध हो पर मुक्त होना चाहता हो, और दूसरा उच्च कोटि का विचार है जो मुक्त पुरूष के लिये है, एक शास्त्र की बात है और दूसरी भगवान को न केवल कर्मफल बल्कि कर्म तक को समर्पित करने की बात है। शास्त्र की विशेषता यह है कि वह एक ऐसा जीवन विधान हमारी व्यक्तिगत कामनाओं, युक्तियों, आवेशों और संस्कारों से भिन्न होता है, हमारी स्वार्थपरता और स्वेच्छाचारिता से बाहर का होता है और जिसके अनुसार सच्चे भाव के साथ जीवन यापन करने से हम केवल आत्म संयम ही प्राप्त नहीं कर सकते, बल्कि सात्विक अंहकार को भी अधिक से अधिक मात्रा में घटाकर अपने-आपको मुक्ति के लिये तैयार कर सकते हैं। प्राचीन युग में शास्त्र था वैदिक धर्म जो मनुष्य के सामने उसके सच्चे स्वरूप को खोलकर रख देता था तथा उसे यह दिखा देता था कि वह अपने स्वभाव के अनुसार किस प्रकार जीवन-यापन कर सकता है। उसके बाद इसने स्मृतियों के विधान का रूप ग्रहण कर लिया जिसने अधिक मोटे रूप में इस बात को करने का प्रयास किया और इसके लिये मनुष्यों का, सामान्य विभागों में, जिन्हें वेदों में चतुर्वर्ण कहा गया है, वर्गीकरण कर दिया। आज यह शास्त्र अंध यांत्रिक रीति-नीति और सामाजिक परंपरा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह गया है, यह सात्विक नहीं बल्कि तामसिक बन गया है, यह मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि केवल बन्धन रह गया है।

उत्तम-से-उत्तम शास्त्र का भी अहंकार के लिये, पुण्य के अंहकार के लिये तथा पक्षपात तथा व्यक्तिगत मतामत के अहंकार के लिये दुरुपयोग किया जा सकता है। अपने सर्वोत्तम स्वरूप में वह मुक्ति की तैयारी का एक महान साधन है। वह 'शब्द-ब्रह्म' है। परन्तु हमें केवल तैयारी से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, बल्कि ज्यों ही हमारी आँखे खुल जायें, हमें सच्ची स्वतंत्रता की ओर तेजी से अग्रसर होना चाहिये। मुक्तात्मा और मुक्ति का वह साधक जो अपने कर्मों तक का भगवान को समर्पण कर चुका है, दोनों ही उत्तम-से-उत्तम शास्त्र के परे चले जाते हैं--- शब्दब्रह्मातिवर्तते। कर्म के समपर्ण के लिये सबसे उत्तम आधार यह अनुभूति है कि हमारे सभी कर्मों को प्रकृति भगवान के आदेशनुसार करती है और भगवान हमारे स्वभाव के द्वारा उन कार्मों को निर्धारित करते हैं। जिस क्षण यह अनुभूति स्थापित हो जाती है उसी क्षण से सब कर्म भगवान के हो जाते हैं, अब न तो कर्म हमारे रह जाते हैं न कर्म का उत्तरदायित्व होता है, न बंधन, क्योंकि भगवान पर किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं होता, वह तो हर तरह से सबके स्वामी हैं और स्वतंत्र हैं। उस समय हमारे कर्म शास्त्रानुसार चलने वाले मनुष्य के कर्म की तरह न केवल स्वभावनियत-प्रकृति द्वारा नियंत्रित होते हैं और इसलिये धर्म बन जाते हैं अपितु स्वयं हमारा स्वभाव ही एक यंत्र की तरह भगवान द्वारा नियंत्रित होता है। पर ज्ञान की इस स्थिति को प्राप्त कर लेना हमारे लिये उतना आसान नहीं है क्योंकि हम अज्ञान के संस्कारों से भरे हुये हैं। लेकिन साधना की तीन क्रमिक अवस्थायें हैं जिनके द्वारा इस स्तिथि को शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। पहली अवस्था है इस श्लोक के भाव में जीवन-यापन करना—

त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोअस्मि तथा करोमि।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेअर्जुन तिष्ठति।
भ्राभयन् सर्वभूतानि यन्त्ररुढानि मायया॥

"ईश्वर त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा इस प्रकार घुमा रहा है मानो वे किसी यंत्रचक्र पर आरूढ़ हों।" तब तुम अपने अन्दर तीनो गुणों की क्रिया को समझ सकोगे और इस यंत्र के कार्य का निरीक्षण कर सकोगे। तब तुम यह नहीं कहोगे कि 'गुण वर्तन्त एव—केवल गुण ही कर्म करते हैं'। इन अवस्थाओं में, विशेषतः उस समय तक जब तक कि तुम गुणों की क्रिया को ठीक-ठीक पहचानने न लगो, एक बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होती है कि तुम्हें अपने स्वभाव की अशुद्धि का बोध होता है और पाप-पुण्य का विचार तुम्हारे पीछे पड़ जाता है। तुम्हें बराबर यह याद रखना चाहिये कि जब तुमने अपने आपको भगवान के हाथों में सौंप दिया है तब वही इन अशुद्धियों को दूर करेंगे और तुम्हें तो केवल सावधान रहना चाहिये और पाप या पुण्य किसी से भी आसक्त नहीं होना चाहिये। क्योंकि उनहोंने बार-बार अभय वचन दिया है। उन्होंने गीता में कहा है— "प्रतिजाने--- मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ, न में भक्त: प्रणश्यति—मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।"

- पूर्वप्रकाशित कर्मधारा-1997

दिव्य पूर्णता की ओर

(श्रीअरविंद की 150वीं जन्म जयंती पर श्री अरविंद आश्रम – दिल्ली शाखा ने 12, 13, एवं 14 अगस्त 2021 को त्रि-दिवसीय वेबिनार "संभावमी युगे युगे" का आयोजन किया था। इस वेबिनर में 6 वक्ताओं ने अलग- अलग विषयों पर अपने विचार रखे थे। इन वक्ताओं के वक्तव्यों को हम सिलसिलेवार इस पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी प्रथम कड़ी का प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2022 के अंक में डॉ सुरेश चंद्र त्यागी का 'श्रीअरविंद का रचना कर्म – गद्य', डॉ चरण सिंह केदारखंडी का 'श्रीअरविंद का रचना कर्म – पद्य' मार्च-अप्रैल 2022 में तथा 'श्री अरविंद का पूर्ण योग' पर डॉ.रमेश बिजलानी के वक्तव्य मई जून अंक में प्रकाशित हो चुके हैं। इस अंक में है इसकी चौथी कड़ी)

आदरणीय प्रोफ़ेसर बिजलानी जी ने शमा और परवाने की बात की। यह तो सच है कि शमा ही पहले आती है परवाना बाद में आता है। शमा तो परवाने से आकर्षित होकर आती है। इसका योग से बड़ा गहरा संबंध है। अक्सर लोग यह सोचते हैं कि मनुष्य योग करता है। मनुष्य योग की प्रक्रिया करता है। आमतौर पर यह समझा जाता है कि योग एक प्रकार का अनुशासित अभ्यास है जिसमें आपको संलग्न होना है, इसके द्वारा आपको ये-ये-ये-ये.... प्राप्त होगा, अंत में आपको भगवान मिल जाएंगे। ऐसी भी योग प्रणाली हैं जो भगवान को नहीं मानती। एक सीमित योग होता है जिसमें शरीर और मन का तालमेल होता है लेकिन यह तो एक अज्ञानता के घेरे में घूम रही है। योग का प्रारम्भ तब होता है जब मन की भूमिका का अतिक्रमण होता है। जब हम बाहरी चेतना से भीतर जा कर जो एक पर्दा है, जो शमा से अलग करती है, उस पर्दे को चीरकर हम उस शमा के दर्शन करते हैं। इस बात को संत कबीरदास जी ने बड़े सुंदर ढंग से कहा, 'घूँघट के पट खोल री, तब तोहे पिया मिलेंगे'।

श्रीअरविंद इसे अपने अंदाज में कहते हैं – सावित्री में बड़ी उत्साहित करने वाली पंक्तियाँ हैं, जब सावित्री योग का प्रारम्भ करने वाली हैं, उसकी समस्या यह है कि कैसे यह संसार बदले, कैसे यह मृत अचित अंधकार चला जाए, इसी भाव से बुद्ध ने भी राज विभूति का त्याग कर योग का मार्ग पकड़ा। संसार से कैसे अचित अंधकार चला जाए? लेकिन बुद्ध ने जो मार्ग दिखाया वह था संसार से बाहर जाने का मार्ग। लेकिन सावित्री के लिए समस्या यह है कि वह यहाँ इस संसार में रह कर यह जो अचित अंधकार है, वह उस शोक-रोग आदि पर विजय की बात करती है। योग-निष्ठ किसको कहा जाता है? यह पुस्तक सात कांटो दो में आता है, जैसे ही वे बैठती हैं तब वे देखती हैं कि यह तो तभी संभव है जब उससे पहले हमारे हृदय रूपी गुफा में जो चैत्य सत्ता है वह बाहर आकर हमारे ऊपर शासन करे। अभी तो हमारे ऊपर शासन हमारे स्वयं के अंहकार का है। बचपन से हमारा एक नाम, एक पारिवारिक नाम, एक विशेषण, उसके आगे अनेक उपाधियाँ लग जाती हैं। जैसे अनेक लोग अनेक क्रेडिट कार्ड लेकर घूमते रहते हैं प्रायः वे क्रेडिट कार्ड केवल दिखाने का होता है। काम वाले कार्ड को अंत में निकालते हैं, अच्छा ये वाला चल रहा है, वे इंटरनेशनल है। हम भी उसी तरह न जाने कितनी झूठी काल्पनिक पहचानें लेकर घूमते रहते हैं। जितनी ज्यादा हमारी ये दिखावटी पहचानें हैं उतना ही कठिन है योग में प्रवेश करना। यह भी एक समस्या है, क्योंकि उन्हें छोड़ना बड़ा मुश्किल होता है। एक बड़ी सुंदर उक्ति है अमीर खुसरो की, 'छाप तिलक सब छीन लिन्ही मुझसे नैना मिलाय के'। भगवान तो सबसे पहले हरण करते हैं, फिर

रूपान्तरण करते हैं। श्री अरविंद अपने अंदाज में सावित्री में कहते हैं कि 'But for this high spiritual change to be'। कौन से रूपान्तरण की बात कर रहे हैं? मन, प्राण, शरीर, और-तो-और इस जीवन का, सारे पार्थिव जगत का रूपान्तरण 'the heavenly psychic must be put off her veil'।

अब देखिये श्री अरविंद और कबीरजी की पंक्तियों में क्या फर्क है? कबीरदास जी कहते हैं 'घूँघट के पट खोल री तब तोहे पिया मिलेंगे', श्री अरविंद क्या कह रहें हैं 'the heavenly psychic must be put off her veil and step into common nature's rooms' वे बताते हैं कि हमें लगता है कि हम पट खोल रहे हैं उस बाहरी चेतना में आते हैं। लेकिन वास्तव में मनुष्य क्या कर रहा है – वह वहाँ तक जाता है, जब वह करीब पहुंचता है तब शमा उसे खींच लेती है, पट तो वे खोल देते हैं। 'घूँघट के पट खोल री' यहाँ उल्टा है 'the heavenly psychic must be put off her veil'। वह अवस्था, वह प्रक्रिया, वह तकनीक उन सबसे श्रीअरविंद हमें मुक्त कर देते हैं। और तब वे बताते हैं कि आप किस अवस्था में आते हैं? वास्तव में योग-निष्ठ व्यक्ति की क्या अवस्था होनी चाहिए यह बताते हैं 'obedient to high command she sat', सावित्री बैठ गई हैं क्योंकि उनके मन में यह आज्ञा है कि योग का रास्ता अपनाओ। 'Time life and death were passing incidents'। योग इस प्रकार नहीं होता है जब हम दुनिया की नाना प्रकार की चीजों में उलझे हुए हैं, अपनी चेतना को उलझाए हुए हैं। सतही तौर पर जब हमारी चेतना भटकती रहती है तब योग नहीं हो सकता, यह योग की स्वचालित प्रक्रिया नहीं है। भगवान हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण हो जानें चाहिए कि अगर हमारा जीवन चला जाए तो हम जी लें लेकिन अगर भगवान चले जाएँ तो हम नहीं जी सकें।

श्रीमाँ से एक बार किसी ने पूछा, 'Mother, will you tell us something about yoga?' तब माँ पूछती हैं, 'Why do you want yoga for?' यह श्रीमाँ की पहली वार्ता है 1929 की। वे कहती हैं कि तुम्हें योग क्यों करना है? पहली चीज है कि हमारा उद्देश्य क्या है? फिर वे कहती हैं, 'क्या तुम योग कोई सत्ता, शक्ति, अधिकार पाने के लिए करना चाहते हो? या मानवता की सेवा करने के लिए? या योग के पथ पर जाने के लिए? इनमें से कोई भी कारण समुचित नहीं है। माँ हमसे पहले यह प्रश्न करती हैं कि हम योग में क्यों प्रवेश करना चाहते हैं? और फिर वे कहती हैं कि 'परमात्मा को परमात्मा के लिए चाहते हो 'Do you want the divine for the sake of divine?' क्या तुम्हारी सत्ता का एकमात्र उद्देश्य ईश्वर है? यह सैद्धांतिक रूप से सभी योगों का मूल तत्त्व है, जो वास्तविक योग है। आजकल जो योग प्रचलित हो गया है, मैं उसकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ, कि आप स्वस्थ्य रहिए मस्त रहिए, और सारे असुर की तरह, असुरों ने भी योग किया था, मैं उस योग की बात नहीं कर रहा हूँ। यह वह योग है जो सनातन योग है, और इसकी मूल शमा है वह मूल शक्ति जो इस सृष्टि में कार्य कर रही है, वह भगवान हैं। यह सोचना कि हम योग कर रहे हैं यह तो उल्टा विचार करना है। योग भगवान कर रहे हैं, और आज से नहीं कर रहे हैं जब 'Darkness was dense and covered with darkness he was seated within it immense and alone'।

इसी का वर्णन ऋग्वेद में आता है जब हम देखते हैं कि वह प्रारम्भ की एक अवस्था है जब देवता भी नहीं हैं। और वे जो हैं उसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकते हैं, वह है भी और नहीं भी, कौन कह सकता है, और तब वह अपने हरिण्यगर्भ से एक स्वर्णिम प्रकाश प्रकट करता है। एक तप के द्वारा ही इस सृष्टि का सृजन होता है। इस योग का प्रारम्भ यही है। एक ऐसा योग है यह, जहां भगवान अपने आप को इस सृष्टि के साथ जोड़ देते हैं। यह है योग, प्रारम्भ में क्यों जोड़ देते हैं? ताकि धीरे-धीरे इस सृष्टि के कण-कण में दिव्यता प्रकट होने लगे। लेकिन एक योग की विचार धारा ऐसी भी है कि भगवान ने सृष्टि बनाई और उसके बाद 'सूर्य लोकः यथा सर्व चाक्षुश' – आमतौर पर इसका अर्थ यह निकलता है कि सूर्य एक साक्षी पुरुष हैं और वे देख रहे हैं। और जब सृष्टि के साथ वह पुरुष लीन हो जाता है तब वह बंध जाता है और ऐसी प्रतीति होती है कि जब वह उससे अलग हो जाता है तब मुक्त हो जाता है। इसलिए हमारे अंदर योग को लेकर ऐसी विचार धारा पनपी है जिसमें हमने सृष्टि और सृष्टिकर्ता, उन दोनों के बीच में एक भेद पैदा कर दिया, इन दोनों के बीच में खाई पैदा कर दी, ये दोनों मिल नहीं सकते। ये दोनों परस्पर बिलकुल अलग हैं। वहीं से यह सारी मानसिकता आई है। भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन ('Worldly life and spiritual life'), श्रीअरविंद कहते हैं मेरे लिए दोनों में कोई भेद नहीं रहा क्योंकि मेरे लिए, प्रारम्भ से ही मेरे सारे अनुभव 'both this worldly and other worldly' रहा। श्रीअरविंद को अनुभव पहले भी जो हुए थे, जब वे इंग्लैंड में थे। यह देखने वाली बात है कि अपोलो बंदर में क्या हो रहा है? वे जहाज से उतर रहे हैं। उस समय श्रीअरविंद कहीं बैठकर ध्यान नहीं कर रहे हैं। अचानक एक अतुलनीय शांति का अवतरण होता है, और उनके साथ रहता है। तब, यह जो पूर्व धारणा है योग की कि कोई स्थान नियत कर के,

आश्रम में जा कर, इस तरह एक विशेष मुद्रा में शांत चित्त बैठ कर ध्यान करेंगे। ठीक है इसका एक महत्व है लेकिन इसे विधिबद्ध (codified) करने के प्रयास में हम इतनी अधिक प्रणाली में चले गए कि हम उसके सार को भूल गए। प्रणाली की अपनी उपयोगिता है लेकिन हर व्यक्ति की अपने खुद की एक प्रणाली होती है और उसके लिए उसकी अपनी प्रणाली की ही उपयोगिता है। एक व्यक्ति के लिए घुटने पर बैठ कर ऊपर हाथ उठा कर कह देना 'हे प्रभो!.....' यह उसकी प्रणाली है। लेकिन अगर वह सब को कहे तुम ऐसे ही करो तब वह योग नहीं रहा वह धर्म-पंथ हो गया। योग और धर्म (पंन्थ) में फर्क है। योग भगवान से जुड़ने का एक तरीका है, भगवान वास्तव में हमसे कभी अलग नहीं हुए। लेकिन एक प्रतीति होती है। जैसे गर्भ में एक बच्चा होता है उसे यह प्रतीति होती है, अगर उसे कोई प्रतीति होती है तो, कि वह अलग है और उसके अंदर एक छटपटाहट होती है, वह जब गर्भ से ठोकर मारता है तब शायद वह कहना चाहता है कि मुझे कब बाहर निकलोगे इस अंधकार से? माँ क्या कहती है? बच्चा बड़ा हो रहा है। कई बार जब हमारे जीवन में कष्ट आते हैं 'earth's pains were the ransom of its prisoned delight But for joy not for pain this earth was made.'

हमारे अंदर भी कई बार एक छटपटाहट होती है कि ये क्या संसार है? कैसी-कैसी समस्याएँ हैं। जगन्माता कहती है कि थोड़ी देर प्रतीक्षा करो तुम तैयार हो रहे हो। 'क्या, मैं तैयार हो रहा हूँ!' अगर वार्तालाप होता, 'हाँ, हाँ एक नए जगत में तुम प्रवेश करोगे।' बच्चा थोड़ी देर शांत हो जाता है, फिर भी वह बीच-बीच में ठोकर मारता है। फिर एक ऐसा समय आता है जब उसे बहुत दबाव महसूस होता है, उसके लिए जीवन-मरण का अवसर है। आप कभी देखें तो पाएंगे कि प्रकृति की सारी घटनाएँ सांकेतिक होती हैं। बच्चा जब जन्म ले रहा होता है उससे अधिक खतरनाक अवस्था वास्तव में उसके जीवन में और दूसरी नहीं होती है, शुद्धतः शारीरिक दृष्टिकोण से। उसे एक बहुत ही सँकरे रास्ते से बाहर आना है। उसे कुछ भी मालूम नहीं है। कोई बैक्टीरिया, वाइरस कुछ भी मालूम नहीं है कि वह कहाँ प्रवेश करेगा, कहाँ उतरेगा? उसे योग का पहला अध्याय बताया जा रहा है। माताजी कहती हैं कि जब तुम योग में आते हो तब तुम और कुछ भी नहीं केवल विश्वास को पकड़े रहो। बच्चा कैसे आता है , एक जोड़ रहता है न – नाल के सहारे, बस एक पतले से विश्वास के धागे से बंधे हुए। जब तक वह कट नहीं जाती, पहला सांस न ले ले, उसे भी मालूम नहीं है कि इससे सारा जीवन मिल रहा है। उसे अब काटा जाएगा क्योंकि अब उसके ज्ञान का उदय हो रहा है। लेकिन एक लंबे समय तक, माँ कहती है कि तुम्हारी सारी पूर्वकल्पित धारणायें चली जाएंगी। तुमने जो कुछ भी जाना है, सीखा है, समझा है भगवान के बारे में, जीवन के बारे में, अपने बारे में, अगर हम अपने उस सुविधापूर्ण क्षेत्र को ही पकड़ कर रखना चाहेंगे तो हम उस बच्चे की तरह हैं जो उस भ्रूण अवस्था से बाहर ही नहीं आना चाहता है। तब वह प्रजनन की व्यथा, जिसे हम देखते हैं श्रीअरविंद के आगमन के समय, जिसकी चर्चा अवश्य हुई होगी क्योंकि प्रथम विश्व युद्ध - द्वितीय विश्व युद्ध, साम्राज्यवाद, एक प्रकार का मार्क्स कम्म्युनिज़्म, सकारत्मकतावाद आदि अनेक कुछ आप नाम लें, भौतिकतावाद की ऐसी पकड़ कि ईश्वर तो हैं ही नहीं, उस युग में श्रीअरविंद आते हैं और आज देखिये, सौ वर्ष के बाद, यानी कि ये धरती की प्रजनन की पीड़ा थी।

उसके बाद 1956 में एक नया जगत जन्म लेता है। हम देख नहीं पाते हैं उस जगत को। क्यों? योग का दूसरा अध्याय, पहला अध्याय था "Hang By Faith" – कब तक? श्रीमाँ कहती है 'you plunge into the sea without asking what will happen to me.' कि मेरा क्या होगा? आज जो हम इस भाव से पहले कहते हैं कि मुझे बताइये कि मुझे क्या मिलेगा, क्या भगवान ने कोई दस्तावेज़ हस्तराक्षित कराया है, कोई कानूनी पत्र बना है? भगवान कहेंगे कि हाँ बना है अतिमानसिक रचना है। 'आपके हस्ताक्षर दिखाये'। 'ये रहे मेरे हस्ताक्षर, अब तुम करो'। 'नहीं-नहीं, क्या नोटरी से नोटराइज्ड कराया है'? नोटरी कौन करेगा? धर्म के शिक्षक और प्रचारक ही नोटरी हैं। तब वे कहेंगे, नहीं-नहीं हम इस पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे क्योंकि यह तो एक ऐसी घटना है जो कभी घटित ही नहीं हुई है। अतः माँ कहती हैं कि 'You must learn to plunge into the sea'। यह विश्वास रखना होता है। रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि जब कोई व्यक्ति कहता है कि मुझे भगवान चाहिए! भगवान चाहिए! तब वे कहते हैं चल आजा गंगा में नहाने। जब गंगा में स्नान करने आता है तब अचानक उसका सर पकड़ कर पानी के अंदर डाल देते हैं, पूछते हैं, 'क्या चाहिए'? 'प्रभू सांस चाहिए'। 'जिस दिन तू इस तरह से भगवान को माँगेगा उस दिन भगवान मिलेंगे'। लेकिन यह एक पद्धति है, इसे हम यांत्रिक रूप से नहीं कर सकते, कि मैं आज से तीन दिन बैठ जाऊंगा, भगवान-भगवान करूंगा। तब ज्यादा उम्मीद यह है कि आप सुप्रामेंटल के बजाय इंट्रामेंटल हो जाएंगे, इंफ्राडेंटल तो हो ही जाएंगे। तब पहली आवश्यकता है विश्वास की।

दूसरा सबक, जो हम बच्चे के जन्म के साथ योग के बारे में सीखते हैं – बच्चा कैसे संबंध जोड़ता है माँ के साथ?

उसे मालूम नहीं है, उसने Divine Life नहीं पढ़ी है। बड़ी-बड़ी किताबें नहीं पढ़ी हैं। लेकिन उसे एक चीज मालूम है, वह है "माँ"। सबसे प्रथम शब्द जो बच्चा सीखता है – ॐ नहीं सीखता है, वह सीखता है 'माँ' – माँ – माँ - माँ। और जब वह कहता है माँ, तब माँ समझ जाती है इस समय बच्चे को गर्मी लग रही है, जब दूसरी बार कहता है माँ, तब समझ जाती है उसे सर्दी लग रही है, जब तीसरी बार कहता है माँ – तब माँ समझ जाती है इसे भूख लग रही है, जब चौथी बार कहता है माँ, माँ समझ जाती है इसे सफाई करवानी है – क्या संबंध है? ये कोई मानसिक संबंध नहीं है, यह हृदय का संबंध है। बच्चे को यह स्पष्ट है कि ये मेरी माँ है। और अगर मैं मेरी माँ के साथ हूँ तो मैं संसार का सबसे सुखी, सुरक्षित, समृद्ध व्यक्ति हूँ। यही है योग का प्रारम्भ, यही है योग का चलन, यही है हमारा मूल, यहीं से हमारा योग प्रारम्भ होता है। सृष्टि में डुबकी लगाने के पहले यही है हमारी असलियत, यही हमारी मूल अवस्था है। फिर जब बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता है – माँ तुम बड़ी निर्दयी हो, माँ तुमने मेरा खिलौना क्यों छीन लिया, माँ तुमने क्यों टीवी बंद कर दिया, तुमने क्यों चौकलेट ले लिया, हर चीज में 'आप क्यों'? आप जानना चाहते हो? माँ हर समय बच्चे के साथ जुड़ी रहती है। उसी प्रकार से मनुष्य चाहे कितना भी दूर चला जाए, योग का तीसरा मूल मंत्र है – भगवान कभी उसका त्याग नहीं करते और सदैव उसको पकड़े रहते हैं, यह हम नहीं जानते। योग क्या है – उस पर्दे को हटा देना, उस अलगाव के बोध को हटा देना। यह अलगाव का बोध कैसे हटता है? वह कौन सी चीज है जो गाँठ लाती है, जो अलगाव का बोध लाती है और वह कौन सी चीज है जो क्षण भर में इसे तोड़ देती है? इसका एक बहुत ही साधारण सा उदाहरण है – दो लोग है, बड़े पढ़े-लिखे हैं और हम यह मानते हैं कि बड़े पढ़े-लिखे लोग बड़े सभ्य होते हैं। एक कमरे में उनको डाल दीजिये, बातचीत प्रारम्भ कहाँ से होगी? मेरे विचार और आपके विचार, थोड़ी देर बाद एक कहेगा आप कुछ नहीं जानते – मूर्ख हैं, दूसरा भी यही कहेगा – आप कुछ नहीं जानते आप मूर्ख हैं। उनके गुट बन जाएंगे – मेरे मत के लोग और उनके मत के लोग, लड़ाई-झगड़े को तैयार हो जाएंगे। यही अहंकार का खेल है। इसमें हम अगर-मगर, लेकिन-वेकिन, शंका सब जमा कर लेंगे। लेकिन एक होने के लिए क्या चाहिए? कुछ क्षण के लिए दोनों भूल जाएँ, मैं जानता हूँ – मैं जानता हूँ। इसमें बस एक छोटी सी चीज है, इस 'मैं' को जरा छोड़ दीजिये, और एक दूसरे को गले लगा लीजिये। बस, इतनी सी ही बात है। जब 'मैं' को छोड़ देते हैं और गले लगा लेते हैं तो सब आनंदमय है। ईश्वर को इस प्रकार गले लगते हैं, श्रीमाँ को गले लगाते हैं और इसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है। लोग मानते हैं कि योग बड़ी कठिन चीज है – कठिनाई कहाँ हैं, कठिनाई हमारे अहंकार में है। दो लोगों के मिलन में क्या कठिनाई है, कौन सी दीवार है? साथ रहते हैं लोग, सब कुछ करते हैं लेकिन एक गाँठ है। कौन सी गाँठ है, 'मैं और तू' - 'तू और मैं' – और वहाँ से शुरू होती है तू-तू मैं-मैं। तू, तू त्याग दे मैं, मैं त्याग दूं तब बस सब एक हो गया। इस एकत्व का नाम ही योग है।

सविती में एक जगह कितनी सुंदर पंक्ति है – 'To feel love and oneness is to live'। लेकिन एकत्व का जो मार्ग हम अपनाते हैं वह है धरातल से एकत्व। आध्यात्मिक सभा करेंगे, अच्छी बात है। बैठक हुई – हम एकत्व की ओर जा रहे हैं। हर वक्ता अपनी बात समाप्त कर अपने समर्थकों से पूछता है 'अच्छा बोलना न मैंने, लोग आश्वस्त हुए होंगे न, लोग मेरे पक्ष में आयें होंगे न।' ये होता है धार्मिक सभा में - गठबंधन, गठजोड़। एकत्व एक को प्राप्त करके होता है। सबसे पहले आप उस एक को खोजें। और वह 'एक' कहाँ हैं – हम सुनते हैं कि वह 'एक' मनुष्य के अंदर है। क्या मनुष्य के अंदर है? हाँ मनुष्य उसको प्राप्त कर सकता है। यह मनुष्य की एक अद्भुत बात है, लेकिन है हर चीज में। 'All life is Yog' का मूल यही है कि हर चीज में, कण-कण में ईश्वर है। और क्या कर रहे हैं वे, केवल साक्षी नहीं हैं, प्रकट करने का प्रयास कर रहे हैं, आप उसमें सहयोग दीजिये। और कैसे हम उसमें सहयोग दें? योग भगवान करते हैं, हमें तो सिर्फ सहयोग देना है। अब देखिये श्रीमाँ की एक बड़ी सुंदर प्रार्थना है, 'प्रार्थना और ध्यान' एक बड़ी सुंदर पुस्तक है। आगे किसी को योग के बारे में जानना तो सब कुछ उसमें दिया हुआ है। श्रीमाँ उसमें एक जगह लिखती हैं 'मैं अब इस घर को छोड़ कर जा रही हूँ'। 'वो दुनिया मेरे बाबुल का घर, ये दुनिया मेरा ससुराल' अब समस्या यह होती है कि ससुराल में तो आप ध्यान नहीं करोगे, ससुराल को नकारात्मक बना दिया है। सोचा तो यह गया था कि आप उसे और सुंदर बनाओगे। खैर अब हमारी यह आम धारणा बन गई है कि यह दुनिया तो एक भौतिक दुनिया है, हमें क्या लेना देना है, यह तो सांसारिक है, असली दुनिया तो वहाँ है। श्रीकृष्ण गीता में बताते हैं, वही बात श्रीअरविंद बताते हैं - त्याग,सन्यास नहीं। लेकिन हम अभी भी गेरुए वस्त्र देख कर बड़े प्रभावित होते हैं। अंदर में भले ही काला भरा हुआ हो तो भी कोई बात नहीं। होना तो यह चाहिए कि बाहर में हमने कोई भी वस्त्र पहन रखा हो, अंदर में श्वेत रखिए, अंदर में गेरुआ रखिए, अंदर में भगवान के रंग में रंग जाइए। यही योग का नियम है। तब माताजी वहाँ प्रार्थना और ध्यान में लिखती है, 'मैं तो यहाँ से जा रही हूँ, इस घर में इतना सुंदर वातावरण रहा। मैं जा रही हूँ, मैं यहाँ पर बहुत सारी चीजें छोड़कर जा रही हूँ । इन वस्तुओं ने मेरी सेवा की है। और

जब ये दूसरे के हाथ में जाएंगी, तो हे प्रभो! इतना ध्यान रखना कि ये उनके हाथों में जाएँ जो उतनी ही सहिष्णुता के साथ, उतनी ही संवेदनशीलता के साथ इनको स्पर्श करें। जरा विचार कीजिये, हम तो ईश्वर के अंश को भी कैसे स्पर्श करना चाहिए यह नहीं जानते। माताजी एक साधारण वस्तु को भी, जिसे हम साधारण कहते हैं, के प्रति कितनी संवेदनशील हैं।

बहुत पहले एक पुस्तक आई थी, 'God of small things', बड़ी प्रसिद्ध हो गई थी। लेकिन यह है वह 'God of small things'। वह नहीं है 'God of small things'। वह तो देवत्व के विध्वंस के लिए है। छोटी से छोटी वस्तु में भी, एक हाव-भाव में भी। भारत की सभ्यता को देखिये, नृत्य-कला-विज्ञान- चित्र-शिक्षा-मानवीय संबंध, सब कुछ शिशु-गर्भधारण – मृत्यु सब के संस्कार थे, सब को भगवान के साथ जोड़ने का प्रयास था। स्नान कर रहे हैं तो भगवान के साथ जुड़ रहे है, भोजन कर रहे हैं तो भगवान के साथ जुड़ रहे हैं। तब अगला कदम जो महत्वपूर्ण है, माताजी बताती हैं, योग का एक मंत्र देती है 'Remembar and Offer', हाँ यह तो गीता में भी लिखा है। एकदम सही बात है कि गीता में भी लिखा है, यहाँ हम कोई तुलना नहीं कर रहे हैं। स्पष्ट बात है कि हम जब भगवान का स्मरण करके 'Offer' करते हैं हम योग के मूल भूत सिद्धान्त के अनुसार चल रहे हैं। वह तो पहले से ही भगवान का है। वे जब भी चाहें दावा कर सकते हैं। लेकिन वे जब भी दावा करते हैं तब वे लोग भी कहते हैं सब तेरा है – सब तेरा है। भगवान कहते हैं अच्छा सब मेरा है, ले लूँ मैं? भगवान कृपया थोड़े उदार बनिए। वहाँ भी हमारे पसीने छूट जाते हैं। क्या यह वास्तव में उसका है? हाँ, सब तो रोज कहते हैं कि सब तेरा है, सब तेरा है। गुरु नानक जी की कहानी याद है न, किसी को कुछ देना था, गिन-गिन कर दे रहे थे, तेरा (तेरह) पर आकर रुक गए, तेरा-तेरा करते-करते अनाज की पूरी की पूरी बोरी दे दी। उनके पिताजी आए, बोले कि यह क्या कर डाला तूने! क्या करूँ मैं, तेरा के आगे गया ही नहीं, तेरा ही है सब। तेरा का मतलब यह नहीं है कि तेरा-तेरा करते हुए सब कुछ दे दो और फिर मेरा उद्धरण दे कर बोल देना कि दे दो सब तेरा है। तेरा का मतलब मुझे और भी ध्यान से रखना है। हमें वस्तुओं के साथ, मनुष्यों के साथ, जीव-जंतुओं के साथ, वृक्ष के साथ, पेड़-पौधों के साथ। आज के समय में इससे ज्यादा और क्या चाहिए – धरती, नदी, नाले, पर्वत, आकाश सब के साथ। हम दर्शन की बात न करें बल्कि उसे आचरण में उतारें। यह सब भगवान का है तब हम उसके साथ कैसे व्यवहार करेंगे? क्या अपने घर में हम अपनी पत्नी या पति के साथ आज कैसा व्यवहार करेंगे? क्या हम वैसा ही व्यवहार करेंगे कि वह भगवान के हैं। हम क्यों कलुष लाएँगे, क्यों झगड़े करेंगे? अलग भी होना है तो, हर किसी की अपनी जीवन यात्रा है, किन्तु आपस में कटुता वैमनस्य ये सब लाकर हम भगवान के साथ कैसे चल सकते हैं। तब 'Remembar and Offer' में श्रीअरविंद ने एक और चीज जोड़ दी है वह है 'Rejection'। हमको क्या त्याग करना है? घर परिवार छोड़ कर कोई बहुत बड़े योगी हैं, सन्यासी हैं 1008 बार परम श्रद्धेय श्री श्री.........। 'अच्छा! उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है। क्या छोड़ा है उन्होंने जो उनका अपना था?' 'घर-परिवार'। 'अच्छा, वो उनका अपना था! हमने तो सुना वह सब भगवान का था'। इस प्रकार किसी सन्यासी से बहस मत कीजिएगा। अपने अहम को कोई छोड़ नहीं पाते हैं। क्या-क्या सुना देंगे, पता नहीं गाली-गलौच पर आ जाएँ। छोड़ना तो उसको है जो हमारे और भगवान के बीच में आ रहा है। और वह हम स्वयं जान जाएंगे, उसके लिए कोई नियम बनाने की जरूरत नहीं है। और इसका उल्टा भी सही है – हर चीज भगवान की बनाई जा सकती है। कोई ऐसी गति नहीं है, निम्न से निम्न जिसके पीछे भगवान न हों और उसको आप बदल नहीं सकते। बस यही दो साधारण से सिद्धान्त हैं – किसे त्यागना है, उसे जो आपके और भगवान के बीच है। और किसको स्वीकार करना है – उस हर चीज को भगवान के साथ जोड़ना है। इसको कहते हैं स्वीकृति।

लेकिन ये सब हम क्यों करेंगे? यहाँ श्री अरविंद कहते हैं, जिस शमा की बात है, यह शमा कौन सी है? 'Flame of Aspiration', आकांक्षा की ज्योति। कहाँ जलती है यह अखंड ज्योति? यह तो कण-कण में जलती है। लेकिन हमने देखा नहीं। देखेंगे कैसे आप, हमने तो अणु-परमाणु को भी नहीं देखा, हमने तो शरीर को चीर-फाड़ कर दिल कैसे धड़कता है यह भी नहीं देखा। लेकिन हाँ मानते हैं की वैज्ञानिकों ने चीर-फाड़ की है तो उन्होंने दिल को देखा होगा। लेकिन वे कहते हैं की हमें चीर-फाड़ कर के आत्मा नहीं मिली। अरे क्या आप आत्मा को ढूंढ रहे थे? आत्मा तो ऐसे ढूँढी नहीं जाती है। तब इसी प्रकार से हर किसी के अंदर 'Flame of Aspiration' आकांक्षा की ज्योति प्रज्वलित है लेकिन वह ढँकी हुई है। खूब सारी धूल-मिट्टी सदियों से पड़ी है। किसने डाली? विश्व शक्तियों ने डाली। हमारी क्या भूमिका थी? हमने कहा डाल दो। क्योंकि हम इस भाव से चल रहे थे सब भगवान का है। देखिये वही सत्य, जीव का रहस्य, सब डालते चले गए और हम अचेत अवस्था में रहे । हम पर तो विष्ठा डाल देते और हमें लग रहा था कि यह तो कोई बड़ी अच्छी-स्वादिष्ट चीज है। इस प्रकार इस जीवन में सजग-सचेत विकल्प का चुनाव करना होगा। नहीं तो इस संसार में बहुत कुछ आ रहा है और अगर हम यह मानें कि सब ठीक है, सब में भगवान हैं, नहीं सब के सार में भगवान हैं।

उनके प्राकट्य से हमें सहयोग करना है। प्रकटन कैसे होता है? जब हम हर चीज के साथ अपनी आकांक्षा को जोड़ देते हैं। आकांक्षा क्या है? 'हे प्रभो! एक सेमिनार है, हम नहीं बोलेंगे आप बोल लेना'। 'पर हमें तो सुनना है'। 'हम नहीं सुनेंगे, प्रभु आप ही सुन लेना'।

एक जगह श्रीअरविंद ने बड़े सुंदर ढंग से कहा है, 'Lift your eyes towards the Sun' जहां तक मुझे याद है SABCL उपनिषद खंड 12 पृष्ट 475 में है और अंत कैसे करते हैं, 'It is that which has set you here today to listen to yourself in me', यह है एकत्व। भगवान हमें इस तरह से सम्मिलित करते हैं। सम्मिलित होने के लिए हमारे अंदर क्या आकांक्षा होनी चाहिए? हर चीज सुंदर बने। सतत प्रगति की चाह। किस ओर प्रगति करें? दो प्रकार की प्रगति है। एक वह जो इच्छा करवाती है। लेकिन इच्छा की प्रगति बराबर-सतही (हॉरिजॉन्टल) प्रगति है। आज हमारे पास एक गाड़ी है, कल मुझे दो और चाहिए। और लोग औचित्य-दोषमुक्ति के कारण बताते हैं – क्या करूँ एक बच्चा हो गया न, एक मेरी पत्नी को चाहिए, एक बच्चे को चाहिए और एक मुझे चाहिए। अरे बच्चे को बड़ा होने दीजिये, उन्हें खुद भी कुछ करने दीजिये। इस प्रकार से लोग अपनी उन्नति करते हैं और इसे प्रगति कहते हैं। लेकिन वे किस तरह इसे प्रदर्शित करते हैं – मेरे पास चार गाड़ियाँ हैं, दो अंदर हैं और दो बाहर खड़ी हैं। गाड़ियों से पहचान होती है। इच्छा इस तरह की प्रगति कराता है। हमने एमबीबीएस कर लिया, एमबीए कर लिया अब हम कैसे प्रभु के पास पहुंचे, कैसे हम उस शिखर पर पहुंचे यह भी प्रगति का एक ईंधन है लेकिन बहुत ही निम्न स्तर का ईंधन है। असली ईंधन है, दैवी पवित्र शक्ति। और उसके लिए हमें हर वस्तु के साथ आकांक्षा होनी चाहिए। हे प्रभु आज मैं एक रोगी को देख रहा हूँ ऐसा कुछ करना, मैंने तो जो भी पढ़ा है वह तो आप जानते ही हो यह तो पूरा अज्ञान है, लेकिन आप तो सर्वज्ञ हो। जब भी मैं किसी मरीज को हाथ लगाऊँ, जब भी मैं उसकी नब्ज़ पकड़ूँ आप भी उसकी नब्ज़ पकड़ लेना। आप तो नब्ज़ के साथ सीधे उसकी आत्मा तक पहुँच जाओगे और अंदर से इलाज करोगे। हे प्रभो! मैं जब उसे देखूँ और सुनूँ तब आप उस समय उपस्थित होना, हर चीज में। भगवान! मैं समोसा खा रहा हूँ। क्या यह निषेध है? दिलीप कुमार राय जब यहाँ पर आए देखा कि कई लोग रसगुल्ला खा रहे थे और चाय पी रहे थे उन्होंने कहा यह योग मैं कर पाऊँगा क्योंकि रसगुल्ला निषेध नहीं है। रसगुल्ला निषेध नहीं है लेकिन रस निषेध है। रसगुल्ले में अगर चटकारा लेने लगे तब समस्या है, तब निषेध है। कहने का अर्थ यह है कि हर चीज को एक अभिलाषा के साथ। हमारी सभ्यता में तो यह स्वयं निहित है, लेकिन यंत्र-वत हो गया था। अतः श्रीअरविंद सनातन सत्य को उद्घाटित करते हैं जिसे हम करते थे लेकिन अब हम उसे भूल गए हैं। पाश्चात्य प्रभाव के अंतर्गत, 'सब वह एक ही है' के वेदान्ती समझ में चले गए थे। लेकिन हम उस अभ्यास को भूल गए थे कि भोजन शुरू करते समय लोग पानी से चारों तरफ घेरा करते थे – हे प्रभो आपका प्रसाद है। इन सबों को हम भूल गए थे, यह तो बड़ी साधारण सी चीज है। इसे भी शायद कोई पादरी आकर बता दे कि हम इसे 'पवित्र' कर रहे हैं तब शायद हम इसे स्वीकार कर लेंगे, ईश्वर के नाम पर।

श्रीअरविंद कहते हैं बाहरी कर्मकांड की जरूरत नहीं है। बाहरी कर्मकांड की समस्या यह है कि वह बड़ी यांत्रिक-कठोर हो जाती है। तूने भगवान के पास जा कर कैसे माथा टेका? कुछ लोग आश्रम में आते हैं, बच्चा खेल रहा है माताजी के सामने, उन्हें समस्या हो जाती है, यह बच्चा माताजी का आदर नहीं कर रहा है। वे बच्चे का माथा जबरदस्ती पकड़ कर, कभी-कभी तो बड़ी निर्दयता से, माथा टिकवाने का प्रयत्न करते हैं। अब वह बच्चा कह रहा है कि ऐसे क्यों कर रहे हो, वह कुछ समझ नहीं पाता। माँ ने कई बार कहा, अरे छोड़ दो उसे, मैं उसके लिए माँ हूँ, मैं जानती हूँ कि उसे कैसे सँभालना है। बाह्य पूजा से अधिक आंतरिक पूजा। प्रभु हम भोजन ले रहे हैं, आपने दिया है। इसका आनंद लें, हर प्रकार से लें, हर चीज में, ये मानवीय संबंध हैं। अहंकारयुक्त संबंध क्या होते हैं, मैं हूँ और तुम हो, अगर तुम मेरे अहंकार का पोषण नहीं करते तो तुम अपने रास्ते जाओ और मैं अपने रास्ते। लेकिन वहाँ भी मिलेगा दूसरा अहंकारी व्यक्ति, तीसरा भी मिलेगा, चौथा भी। हमारे एक मित्र हैं, जब पाँचवीं बार विवाह करने जा रहे थे तो कहा आप साक्षी बन जाइए। 'आप अपने पाप के भागीदार मुझे क्यों बना रहे हैं, यह 15 दिन चलाने वाली नहीं है'। 'नहीं-नहीं मैंने विज्ञापन दिया था', उन्होंने दिखाया, एक हजार शब्दों का लंबा विज्ञापन था। सब कुछ चाहिए, कान्वेंट से शिक्षा प्राप्त, सुंदर, सुशील, ग्रहणी भी, काम करने वाली भी, यानि सब कुछ। मैंने कहा इसके लिए आपको मरणोपरांत स्वर्ग में शायद मिल सकता है वह भी संदेहास्पद ही है। क्योंकि स्वर्ग में ऐसे-ऐसे कांड हुए हैं कि कुछ कहने लायक नहीं हैं। बात विवाह की नहीं है, इन सब संस्कारों को हमने समाप्त पर दिया है, क्योंकि इन सबका 'संस्था-करण' कर दिया है।

हम जिस युग में प्रवेश कर रहे हैं उसमें संस्था नहीं है सत्य है। सत्य क्या है? माताजी ने सरलीकरण कर दिया। आपके बीच में प्रेम है, आप रहिये साथ में। प्रेम चला गया तो

अब ये क्या कर रहे हो? लेकिन एक और चीज कर सकते हो। बहुत से लोग कहते हैं कि नहीं, ये तो बहुत उग्र है, हम तो यह नहीं कर सकते, हमारे संस्कार आदि का क्या होगा? ठीक है आप रहिये, अग्नि के फेरे लेकर विवाह करना है, कीजिये, लेकिन यह मान कर चलिए कि हमारे बीच का संबंध एक दूसरे की भगवान की ओर प्रगति कराने में है, उसमें सहायक है। यह तो हम कर सकते हैं। एक दूसरे के विकास में हम सहायक बनें। साथ रह कर हो या अलग होकर, लेकिन जीवन भर यह अभीप्सा हो कि अगर एक क्रोध करे तो दूसरा क्षमा के द्वारा, समझ के द्वारा, करुणा के द्वारा सहायक हो। यह तो हम कर सकते हैं।

माताजी एक जगह बताती हैं कि दुनिया में बुराई का निवारण कैसे कर सकते हैं? वे कहती हैं कि बहुत ही साधारण सा कार्य है, वे बौद्ध के राजयोग का उपाय बताती हैं। आप उसे उल्टी ताकत से, उल्टी तरंगों से उसे बदल दें। अगर आपके प्रति कोई घृणा कर रहा है तो आप उसे प्रेम से बदल दें। यह नहीं कह रही हैं कि युद्ध मत लड़ो, कृष्ण भी यह नहीं कह रहे हैं, लेकिन पहले अपने अंदर करुणा पैदा करो। अगर आपको युद्ध लड़ना है तो लड़ो, गीता और महाभारत एक दूसरे के पूरक हैं, अगर इनको अलग करके देखें बात समझ नहीं आती। पूरक क्या है? गीता से आप उस आंतरिक अवस्था को प्राप्त करो, फिर आप संसार के संग्राम करो। बिना उस आंतरिक अवस्था के आप का समर तो अन्य किसी भी प्रकार का एक साधारण युद्ध ही है, उसका कोई मतलब नहीं है। इस प्रकार हर चीज को ऊपर उठाने के लिए चाहिए अग्नि। अग्नि का दो काम होता है – हर चीज को शुद्ध करती है और हर चीज को ऊपर उठाती है। यही यज्ञ है। यज्ञ क्या है? कोई भी गति, साधारण से साधारण, हाथ पकड़ना तक, पुस्तक पढ़ना है, भोजन पकाना है, बैठना-सोना, अभीप्सा की अग्नि द्वारा हम उसी चीज के अंदर एक नया स्पंदन प्रारम्भ करते हैं। जब हम ईश्वर का नाम लेकर, श्रीमाँ का नाम लेकर जब हम उसे जोड़ देते हैं। इस जोड़ने का नाम ही योग है। धीरे-धीरे यह अभिप्सा की अग्नि उस चीज को शुद्ध करती जाती है, उसे ऊपर उठती जाती है, उसके दिव्य स्वरूप में। हर चीज का अपना एक स्वरूप होता है। हर चीज का, निम्न से निम्न वस्तु का भी अपना स्वरूप होता इसीलिए उनका अस्तित्व होता है अन्यथा उनका कोई अस्तित्व ही नहीं होता। तब अभीप्सा है दूसरा।

और तीसरी चीज जो, प्रथम भी है और अंतिम भी। भाई जिसका हमें पाठ पढ़ाया जाता है, गर्भ से। गर्भ में बच्चा क्या करता है? समर्पण। गर्भ से बाहर निकलता है तब क्या करता है – माँ के प्रति समर्पण। जब स्कूल जाता है तब क्या करता है – शिक्षकों के प्रति समर्पण, पुस्तकों के प्रति समर्पण। शादी हो जाती है तब क्या करता है – पत्नी के प्रति समर्पण, पति के प्रति समर्पण। उम्र कुछ और हो जाती है तब क्या करता है – बच्चों के प्रति समर्पण। जब और थोड़ा बड़ा हो जाता है, वयोवृद्ध हो जाता है, तब यमराज दरवाजे पर दस्तक देते हैं – डाइबिटीज़ हो गई है, फिर थोड़े दिन बाद ब्लड प्रेसर हो गया – ठक-ठक। तब फिर मनुष्य क्या करता है – बाबाजी लोगों के प्रति समर्पण। फिर जब वहाँ से भी निराश हो जाता है, बाबाजी कहते हैं मृत्यु तो होनी ही है, जो जन्मा है वह मरेगा, इसका और कोई उपाय नहीं है, तब मृत्यु के प्रति समर्पण। इन सब समर्पण की जगह अगर हम केवल एक समर्पण सीख लें और केवल उसे ही करते चलें, 'माँ के प्रति समर्पण'। श्रीअरविंद कहते हैं इस योग में 'Surrender is the first word, surrender is the last word and surrender is the middle'। यही रास्ता है। कितने सुंदर-सुंदर पत्र हैं। बंगला में है एक जगह लिखते हैं 'Mother is the path and the mother is the goal'। कौन सी मदर, संसार की माँ नहीं, हाँ निश्चित रूप से वे हैं लेकिन रूपान्तरकारी शक्ति जो माँ मीरा के नाम से प्रकट हुई हैं, इस धरती पर उनको यह जनादेश मिला है। हाँ पूरे संसार की माँ हैं वे, हमें सुरक्षा प्रदान करेंगी, करती हैं, लेकिन रूपांतरकारी शारीरिक रूप में जिस माँ की बात कर रहे हैं वे हैं श्रीमाँ, अवतार की भूमिका ही यही होती है। यह कह देना कि राम-कृष्ण सब एक जैसे हैं, राम-रहीम, ईश्वर तेरो नाम अल्लाह तेरो नाम, ये ठीक है बहुत अच्छा है, लेकिन मिलावट मत कीजिये। राम एक नयी चीज लाते हैं इस धरती पर। अगर वह सदा-सदा के लिए ठीक है तो फिर कृष्ण की क्या जरूरत थी? कृष्ण और एक नयी चीज लाते हैं, बुद्ध अलग नयी चीज लाते हैं। श्रीअरविंद उससे आगे लाते हैं। यह अवतार की निरन्तरता है। हम सब कैसे एक हैं? सारे संत-महात्मा एक हैं? उसके बाद संत हों या न हों हमने मान लिया की संत हैं, हमने मान लिया गांधीजी, श्री अरविंद सब एक हैं। अरे एक राजनीतिक चिंतक है दूसरा योगयोझेश्वर हैं। ये दोनों आदरणीय हैं, लेकिन दोनों अलग-अलग हैं, समकक्ष नहीं हैं, उन्हें क्यों साथ-साथ बैठते हो। यह हमारी भारतीयता में कभी नहीं थी। यह जड़ता और मूर्खता का लक्षण है। भारतवर्ष तो वैसा देश है जब राजा हरिश्चंद्र के दरबार में विश्वामित्र आते हैं तब वे खड़े हो हैं। कहते हैं ये आसान आपका है। या वशिष्ठ जब आते हैं राजा दशरथ के दरबार में, या याज्ञवल्क रहा जनक की राजसभा में आते हैं वे जानते हैं कि जब एक ऋषि, योगी, मनीषी, चिंतक, विचारक आते हैं तो उनसे कैसा बर्ताव किया जाता है।

ये सारी चीजें हमारे अंदर से विलुप्त हो रही हैं। इसका कारण यह है कि हम मन के स्तर पर ही रहते हैं। लेकिन योग तो तब प्रारम्भ होता है जब मन की भूमि का अतिक्रमण होता है। पहली चीज है चैत्य का बाहर निकलना। अभीप्सा, अस्वीकार और समर्पण – इसके द्वारा चैत्य निकलता है। श्री कृष्ण की कहानी है कि श्रीकृष्ण जैसे ही जेल से बाहर निकलते हैं शुरू हो जाती है उनकी लीला धीरे-धीरे। लेकिन श्री कृष्ण केवल मथुरा-वृन्दावन के लिए नहीं आए हैं, श्रीकृष्ण पूरे भारत वर्ष में, आर्य भूमि का अलख जगाने, और केवल भारत भूमि ही नहीं, पूरे विश्व में। लेकिन प्रारम्भ वहाँ से करते हैं। चैत्य तो थोड़े समय के बाद आता है यह सीमित देश, यह सीमित मानसिकता, यह सीमित विचार। माताजी कहती हैं कि जब चैत्य बाहर आता है तब मन का विस्तार हो जाता है, हृदय दया-भाव से परिपूर्ण हो जाता है, प्राण के अंदर एक नयी ऊर्जा, शरीर के अंदर स्वास्थ्य, सामंजस्य, शक्ति सब आने लगते हैं। क्योंकि वही हमारा असली 'स्व' है, शमा है। वह चैत्य धीरे-धीरे बाहर आता है, जैसे घर में बहू आती है, आप चाहे जितना भी रोकने का प्रयास करें, पुरानी परम्पराओं को वह बदली करेगी ही। अगर पति सहयोग देगा तो जल्दी हो जाएगी, नहीं तो धीरे-धीरे आपको पता ही नहीं चलेगा वह धीरे से इधर से उधर कर देगी। अंत में वह पूरे घर को बदल डालेगी। तब पति भी कहेगा तुमने तो अच्छा काम किया। वैसे ही चैत्य भी जब आता है और हम उसे सहयोग देते हैं तब बदलाव जल्दी हो जाता है। वही अगर सहयोग नहीं करते हैं तब समय लगता है। लेकिन करेगा जरूर। कृष्ण की तरह बड़ा होगा, और जब बड़ा होगा तब उस प्रक्रिया में कालियनाग भी आयेगा, पूतना भी आएगी,तृणावर्त भी आयेगा। लोग बड़ा घबड़ा जाते हैं कि भगवान हमारे जीवन में कोई कष्ट न हो। क्यों नहीं होगा, जरूर होगा, हम प्रगति करना चाहते हैं, छलांग लगाना चाहते हैं, पांडिचेरी से लंका, मैं यह मान रहा हूँ कि दक्षिणी के तट पर ऐसे ही हनुमान जी पहुंचे होंगे, कौन जाने। तब आप वहाँ तक छलांग लगाना चाहते हो, मार्ग में सूरसा भी न आए, लंकिनी भी न मिले, तब श्रीअरविंद कहते हैं, 'हाँ वैसे यह संभव है'। 'अच्छा!' 'लेकिन एक शर्त है, आपको वह रास्ता अपनाना होगा जिसे 'प्रकाश मार्ग' - sunlit path, कहते हैं। उसका भी वर्णन रामायण में बड़े सुंदर ढंग से है। ईश्वर को अपने हृदय में स्थापित कीजिये, लंकिनी आएगी, सुरसा भी आएगी लेकिन जब माँ साथ में है, तब कृष्ण हैं, तब पार्थ हैं, वहीं माँ है।

एक समय आता है जब चैत्य मानव की सीमित चेतना को तोड़ डालता है। तोड़ता क्या है उसे इतना महीन बना देता है कि भगवान का हल्का सा स्पर्श और सब खुल जाता है। अक्सर कहते हैं कि भगवान खोलते क्यों नहीं? क्योंकि हमारी बुद्धि का ढक्कन इतना कठोर है कि उन्हें हथौड़ा लेकर मारना पड़ेगा। और हथौड़ा लेकर तोड़ेंगे तो सटक जाएगा आदमी। फिर कहेंगे कि देखो भगवान के रास्ते पर चल कर क्या होता है? आदमी पागल हो जाता है। डॉक्टर पांडे का मरीज हो गया। क्या पता डॉक्टर पांडे के बारे में ही बोलें कि इनका इलाज कौन करेगा? क्योंकि जब वह ढक्कन खुलता है तब एक नया दृश्य प्रकट होता है। सारा संसार बदल जाता है। माँ कहती है 'Reversal of consciousness'। हम अंदर से बाहर देखने लगते हैं और ऊपर से नीचे 'ऊर्ध्व मूलम', तब सृष्टि अलग नजर आती है। तब हम देखते हैं कि ये भगवान प्रकट हो रहे हैं। तब हम सही माने में इस 'सामूहिक योग' में प्रवेश करते हैं, तब योग का एक अलग आकार सामने आता है। सामूहिक योग का अर्थ यह नहीं है कि सब एक साथ बैठ कर योग कर रहे हैं, हाँ सब एक साथ करें, यह एक अच्छी बात है। आज जोड़िया बाबाजी का जन्मदिन भी है। वे दो ही चीजें बताते हैं, नाम जप और पाठ-जप। इसी बात पर वे ज़ोर दिया करते थे। माँ के नाम का जाप और पाठ, नियमित अध्ययन। लेकिन सामूहिक योग तो तब प्रारम्भ होता है जब हमारी चेतना विश्व चेतना में प्रवेश करने लगती है। तब हम सोचने लगते हैं कि अरे मैं तो सोचता था कि मेरे अंदर कुछ नहीं है, यह तो दूसरों के अंदर भी है लेकिन जो दूसरों के अंदर है वह तो मेरे अंदर भी है। ऐसी कोई गति ही नहीं है जो दूसरों के अंदर हो और मेरे अंदर न हो। और तब हम उन सब चीजों को यज्ञ के रूप में अर्पण करने लगते हैं। अंदर में वही प्रक्रिया चलती रहती है – विश्वास, अभीप्सा, समर्पण। एक मूल मंत्र वह है सत्यता-निष्कपटता-सच्चाई।

इस शब्द पर माँ बहुत ज़ोर देती हैं – सत्यनिष्ठा। इस योग की अगर सबसे कठिन कोई चीज है, मैं अपने अनुभव से बता सकता हूँ, तो वह है सत्यनिष्ठा। सत्यनिष्ठा क्या है? – हर चीज में हम धारण करें सत्य को। सत्य का अर्थ कानूनी सत्य नहीं है, हर चीज में एक सच्चाई है और वह सच्चाई प्रकट होनी चाहिए। हमारी मानसिक धारणा के अनुसार नहीं। हम जैसा सोचते हैं, हमारा अहंकार, हमारी सुविधा का सत्य नहीं। हर वस्तु का अपना सत्य है। हर व्यक्ति जो हमारे संपर्क में आता है उसके अंदर उसका अपना एक सत्य होता है। वही सत्य का असली स्वरूप है। उपनिषद में, सत्य मेव जयते, देवताओं ने सत्य का मार्ग अपनाया है। यह सत्य कोई सीमित सत्य नहीं है कि मैं सत्य बोलता हूँ। 'आप सत्य बोलते हैं', 'हाँ, मैं हर समय सत्य बोलता हूँ'। खरी-खोटी बोलने और सत्य बोलने में बहुत अंतर है। 'नहीं, मैं हर समय सच बोलता हूँ', 'अच्छा आप ने सत्य के दर्शन किए हैं'। माताजी बताती हैं कि सत्य सर्वोच्च सद्भाव और

आनंद है। सत्य सामंजस्य लाता है, जोड़ता है, तोड़ता नहीं। सत्य की सुंदरता यही है क्योंकि सत्य ने सारी सृष्टि को अपने अंदर समेटा हुआ है। अगर युद्ध भी होता है तो अंत में युद्ध के पथ से सामंजस्य की ओर ले जाता है। यही सत्य की विशेषता है। यह है सत्य, सत्य मेव जयते। सत्य के अनुसार, विशालता में चीजों को सही स्थान पर पहुंचाता है, यह हम आज के युग में देख रहे हैं। 'Ritchit, भगवान का विधान है, दिव्य नियमों के अनुसार चीजें होनी चाहिए। अभी हमारा मन, जीवन सब अव्यवस्थित है। अब उसको व्यवस्थित करना है लेकिन उस में थोड़ा समय लगेगा। आखिर लाखों वर्षों की अव्यवस्था है, इसीलिए ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है। दो चार हजार सालों बाद उन्हें आना पड़ता है। देखा जाए तो अभी लगभग 2500 वर्ष पर आना पड़ा। उन्हें बार-बार आना पड़ता है। क्यों? क्योंकि हम बार-बार अव्यवस्थित कर देते हैं। जब तक माँ एक कमरे को ठीक करती है, 10 दिन तक जब तक रहती है ठीक रहता है, उसके बाद बच्चा फिर गड़बड़ कर देता है लेकिन थोड़ा बहुत सीखता है। माँ को फिर आना पड़ता है संभालने के लिए। यानी हम जो अव्यवस्था करते हैं इस संसार में, भगवान आते हैं, व्यवस्थित कर बता-सीखा कर चले जाते हैं, 'hard is the world-redeemer's heavy task' जब वे चले जाते हैं, तब हम उनके ऊपर एक मकबरा खड़ा कर देते हैं, एक चर्च बना देते हैं, एक धर्मशास्त्र बना लेते हैं, एक पुस्तक सब के हाथ में पकड़ा देते हैं, और फिर उसका वचन-वाचन होता है। लेकिन योग कोई पुस्तक को पढ़ना नहीं है। योग तो आग में जलना है। और इस आग में जलाने का बड़ा सुंदर वर्णन किया है इन दो पसंदीदा शेर में:

'यह इश्क नहीं आंसा, बस इतना समझ लीजे।
एक आग का दरिया है, और डूबा के जाना है।

अगर हम कोई हवाई जहाज से जाना चाहें तो नहीं जा सकते, यह तो आग का दरिया है और आग जलती रहती है, जो योग हमारे अंदर छिपा हुआ है उसे ढूंड कर निकालेगी, जन्मेजय के नाग यज्ञ की तरह, 'Nothing will remain at the end'। माताजी कहती हैं कि एक बार भगवान की तरफ मुड़ गए और भगवान ने स्वीकार कर लिया तब फिर सारा संसार भी नहीं रोक सकता। तब भलाई इसी में है कि संसार में सब को बताते चलो, अपने गर्व को छोड़ दो, नहीं तो छिन जाएगा। हाँ यह तो सही है कि 'यह इश्क नहीं इतना आंसा, बस इतना समझ लीजे। एक आग का दरिया है, और डूबा के जाना है'। लेकिन इतना कठिन भी नहीं है। अगर आप एक बार थोड़ा-थोड़ा कर के चलोगे तो बहुत कठिन होगा लेकिन एक बार छलांग लगा दोगे तब 'सर्वाहुति' तो बहुत आसान है। इसी सर्वाहुति का ही नाम समर्पण है। ले यह तेरा है, 'let Thy will be done' यही समर्पण है, हृदय से कहना।

और दूसरा पसंदीदा दोहा है कबीरदासजी का, वे कहते हैं कि

ये घर है प्रेम का, खाला का घर नाहीं,

यह तो बहुत अच्छी बात है, प्रेम ही तो चाहिए हमें, और क्या चाहिए? लेकिन पहले पूरी बात सुन लीजिये। इस घर में ऐसे ही नहीं घुस सकते, इसके लिए टिकिट लगती है। टिकिट लगती है यानी पैसा नहीं, कुछ छोड़ना पड़ता है। मंदिरों में हम चप्पल को बाहर ही छोड़ कर जाते हैं। क्यों? गंदगी-धूल को बाहर छोड़ा कर जाना है। यह और बात है कि जब तक हम वहाँ पहुंचते हैं तब तक और धूल-मिट्टी जमा कर लेते हैं क्योंकि लोग मंदिरों को साफ नहीं रखते। तब, जब आप चप्पल को छोड़ कर प्रवेश करते हो, आप और मिट्टी जमा कर लेते हो। और फिर जब बाहर आते हो तब फिर वही चप्पल पहन लेते हो। लेकिन यहाँ तो दूसरी ही मांग है। चप्पल छोड़ना काफी नहीं है, चप्पल तो वे छुड़वा देंगे, तब मांग क्या है,

ये घर है प्रेम का, खाला का घर नाहीं,
शीश कटाये भुईं धरे, तब बैठे घर मांही।

शीश क्या है? अहंकार, गर्व, घमंड ज्ञान का, धन का, पद का। कहेंगे मैं यह हूँ, मेरे पास यह है...... । भगवान कहेंगे, ठीक है बहुत आए हैं तुम्हारे जैसे ज्ञानी, हारवर्ड से प्राध्यापक भी आए हैं, लेकिन वे तो वैतरणी को पार नहीं कर सके। किसने पार करवाया? वह किसान की लड़की, जिसे वह प्यार करता था। वह समझता था कि वह किसान की लड़की है। वह जगन्माता थी। वह पहचान नहीं सका। हमारी भी यही अवस्था है। बौद्धिक गौरव में हम कहते हैं, अच्छा दिव्य माँ, अच्छा वे फ्रांसीसी थीं, कितनी पढ़ी-लखी थीं, क्या किया था उन्होंने? भैया वैतरणी पार करके दैविक शक्ति से सम्पन्न थीं। अगर जाना है तो यही अनमोल मंत्र है। श्री अरविंद एकदम स्पष्ट करते हैं। अनेकोंनेक चिट्ठियाँ हैं जहां वे कहते हैं कि माँ की व्याख्या – सुझाव ही सही है। अगर हम माँ कि तरफ खुलेंगे तब हम उस राह पर आगे बढ़ जाएंगे। अगर माँ की तरफ खुलोगे तो वे तुम्हें शक्ति दे जाएंगी।

निरोद दा ने पूछा, श्रीअरविंद से, कि आप अपने योग का छोटा से एक रहस्य बता दीजिये। ये इतना विशाल है, अपने

लिख दिया है लेकिन हमें समझ नहीं आता है। तो वे कहते हैं कि यह तो बहुत ही साधारण है। इस योग के दो बहुत ही साधारण से रहस्य हैं, पहला है आध्यात्मिक-अलौकिक तौर पर माँ की तरफ खुलना। यह भक्ति अहैतुकी होती है, मानसिक भक्ति होती है – 'मुझे प्रमाण दो'। प्राणिक भक्ति होती है – मुझे क्या मिलेगा, आप मुझे लिख कर दो, शारीरिक भक्ति क्या होती है – मैं तो रोज जाता हूँ आश्रम में, मैं तो रोज भगवान को प्रणाम करता हूँ, यह तो उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे हमारे साथ कुछ करें। लेकिन आध्यात्मिक भक्ति होती है, माँ ले लो, और कुछ ले लो, ये छोड़ क्यों रही ही माँ, ले लो इसे भी ले लो, सब ले लो। यह है अहैतुकी भक्ति। इसी में उसे आनंद आता है। बस इतना कह कर चुप हो गए। निरोध ने कहा, आपने दो रहस्य कहा था। अपने तो केवल एक बताया है, दूसरा क्या है? श्रीअरविंद कहते हैं दिव्य जीवन की अभीप्सा। अगर हमें मोक्ष चाहिए अनेक, बाबा-संत हैं। पवित्रदा जब आए थे, मंगोल से और पता नहीं कहाँ-कहाँ से सीख कर आए थे, अद्भुत अभ्यास किया था उन्होंने, बौद्ध योगा में शिक्षा ग्रहण की थी। जब वे आते हैं तब श्रीअरविंद उनसे कहते हैं 'तुम क्या चाहते हो', वे कहते हैं 'मुक्ति'। श्रीअरविंद कहते हैं कि अगर मुक्ति चाहिए तो और भी योगी हैं, हाँ कम हैं और उन्हें खोजना सहज नहीं है, लेकिन वे हैं। अगर तुम्हें उससे ज्यादा चाहिए तब तुम यहाँ रह सकते हो। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, मुक्ति तो हमें सुनी है लेकिन ये उससे ज्यादा क्या है? समझ लेते हैं कि यह क्या है, रुक जाते हैं यहाँ। रुकते-रुकते रूपान्तरण योग में प्रवेश करते हैं। अब जब रुके थे उन्होंने औपचारिकता का एक टेलीग्राम डाल दिया कि मैं कुछ दिनों के लिए पॉण्डिचेरी रुक रहा हूँ, मुझे पॉण्डिचेरी देखने की इच्छा है। वह कालांतर ऐसा था जब कोई समुद्र पर चला जाता था तो हम यही समझते थे कि इसका वापस आना संदेहास्पद ही है। वह वैतरणी के पार चला गया, लौट आया तो वह मृत्यु के लोक से वापस आ रहा है, गंगा स्नान करने की अवस्था थी। नहीं पहुंचे, सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गए। बीस दिन निकल गए। तब घर वालों को उनकी याद आई कि मेरे उस मित्र का क्या हुआ। उनका असली नाम तो कुछ और था यहाँ तो वे पवित्र दा बन गए थे। उन्होंने एक तार (टेलिग्राम) भेजा कि कुछ दिन पहले तुम्हारा टेलिग्राम आया था कि तुम पॉण्डिचेरी में हो, उस बात को कई दिन हो गए, तुम अब कहाँ हो और क्या कर रहे हो? पवित्र दा ने इसका उत्तर दिया 'मैं अभी भी इसे देख रहा हूँ'। इस योग की यही सुंदरता है, खूबी है कि इसका अंत नहीं है। अधिकांश योग में, स्वीमिंग पूल की तरह एक कोने से चले और दूसरे कोने पर पहुँच गए और हमें वाहवाही मिल गई, मेडल मिल गया। लेकिन इस योग कि यही सुंदरता है की इसका अंत नहीं है। क्योंकि 'हरी अनंत, हरी कथा अनन्ता'। यह अनंत का योग है। जब तक धरती पर एक-एक कण स्वर्णिम नहीं हो जाता, दीप्तिमान नहीं हो जाता उस सूर्य के आलोक से, तब तक यह योग कैसे समाप्त हो सकता है। क्योंकि यह व्यक्तियों का योग नहीं है, यह समष्टि का योग है यह सामूहिक योग है। सारी सृष्टि का योग है।

"संसार का वर्तमान युग है महान रूपांतरणों की अवस्था का युग। मानवता के मन में एक नहीं बहुत से मूलभूत भाव क्रियाशील हैं और उसके जीवन में उग्र चपेट और चेष्टा के साथ परिवर्तन ले आने को छटपटा रहे हैं । यद्यपि इस आंदोलन का केंद्र प्रगतिशील यूरोप में है फिर भी विचारों के समुद्र मंथन में पुराने भावों और संस्थाओं के इस तोड़ मरोड़ में पूरब भी अधिकाधिक खिंचता चला जा रहा है । कोई भी राष्ट्र अब अधिक देर तक मनोवैज्ञानिकत: आधुनिक जगत की एकता से अलग अपने आप में ही सीमित नहीं रह सकता। यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य का भविष्य सर्वाधिक उस उत्तर पर निर्भर करता है जो पूरब रहस्य रमणी (स्फिंक्स) की आधुनिक पहेली को देगा विशेषकर भारत जो एशियाई भाव के गंभीर आध्यात्मिक रहस्यों का पूज्य संरक्षक है।"

–श्रीअरविन्द

श्री अरविन्द, राष्ट्रीयता के अग्रदूत

रामधारी सिंह दिनकर

जिस साल (सन् १८७२) श्रीअरविन्द का जन्म हुआ, उसी साल फ्रेंच भाषा के नवोदित कवि आर्थर रेम्बू ने 'इलुमिनेशन्स' नामक अपनी कविता की पुस्तक प्रकाशित की थी। मगर यह घटना प्रासंगिक नहीं कही जा सकती, यद्यपि जागे चलकर संसार 'इलुमिण्ड माइंड' (प्रकाशित मन) नामक एक नया शब्द श्री अरविन्द के मुख से सुनने वाला था। प्रासंगिक बात यह है कि जिस साल श्री अरविन्द शिक्षा समाप्त करके भारत लौटे (सन् १८९३), उसी साल विश्व धर्म-संसद् में भाग लेने को स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया और श्री मोहनदास करमचन्द गांधी दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए, जहाँ भगवान उनके द्वारा सत्याग्रह का आदि प्रयोग करवाने वाले थे। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस दिन (१५ अगस्त) श्रीअरविन्द का जन्म हुआ था, वही दिन ७५ वर्ष बाद जाकर, भारत का स्वतन्त्रता दिवस बन गया। यह भी विचित्र संयोग की बात है कि जिस साल हम श्रीअरविन्द की शत-वार्षिक जयन्ती मना रहे हैं, उसी साल हमारी स्वतंत्रता की रजत जयन्ती भी मन रही है। (इस वर्ष हम श्रीअरविंद की 150वीं जयंती एवं अपनी स्वतन्त्रता का 75वां वर्ष मना रहे हैं।')

भारत में राष्ट्रीयता का आरंभ राजनैतिक नहीं, सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में हुआ था। अंगरेजों के शासन या कुशासन की ओर हमारा ध्यान बाद को गया। पहले तो भारत की आत्मा उस विपत्ति का ही सामना करने को जाग उठी, जो विदेशी शिक्षा और संस्कार के कारण हमारे धर्म और हमारी संस्कृति पर आन पड़ी थी। गुलामी की जंजीरों से अपनी देह को मुक्त करने की चिंता भारत को बाद में हुई। पहले उसने अपनी आत्मा की रक्षा के लिए ही विदेशी प्रभावों के खिलाफ विद्रोह किया था।

और यह स्वाभाविक भी था। हमारा देश विदेशियों के द्वारा इतनी बार रौंदा जा चुका था कि सामरिक विजय या पराजय से वह ज्यादा विचलित नहीं होता था। लेकिन धर्म और संस्कृति पर आने वाली विपत्ति को वह बरदाश्त करने को तैयार नहीं था। अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा के लिए भारत ने कट्टर मुसलमानी जमाने में भी कम बलिदान नहीं दिया था। अब जब ईसाइयत और यरोपीय बुद्धिवाद ने भारतीय संस्कृति पर आक्रमण किया, भारत की सनातन आत्मा, विचार के उसे धरातल पर, उससे लड़ने को तैयार हो गयी। यूरोपीय संस्कारों की प्रबलता ने भारत की क्या दशा कर दी थी, इसका विवरण स्वयं श्री अरविन्द के पदों में उपलब्ध है।

"केवल बंगाल ही नहीं, बल्कि सारा भारत देश यूरोपीय सभ्यता की शराब पीकर मदहोश हो रहा था, पश्चिम से आयी हुई निरी बौद्धिक बातों पर फिदा होकर अपनी संस्कृति को भूल रहा था। भारत के लोग भी हर चीज को केवल बुद्धि से समझने, केवल बुद्धि के अधूरे औजार से परखने के आदी हो रहे थे। स्थिति इतनी बिगड़ी कि बंगाल के नौजवान नास्तिक हो गये और जो हाल बंगाल का था, वही घट-बढ़ कर सारे देश का हो गया। भारत देश नास्तिकों का देश हो गया, सन्देहवादियों का देश हो गया, सनकी नौजवानों का देश हो गया।"

इससे भी बुरी बात यह हुई कि जो भी भारतवासी इंग्लैण्ड जा कर वापस आये, वे अपने देश और अपनी सभ्यता से घृणा करने लगे। यूरोप के गुण तो उन्होंने ग्रहण किये नहीं, हाँ, यूरोप की विकृतियों को उन्होंने बड़े शौक से अपना लिया और यहाँ अपने देशवासियों पर धन जमाने के साल से वे भारत की आदतों, रिवाजों, संस्था, धर्म और अध्यात्म-प्रेम की खिल्ली उड़ाने लगे। असल में वे न तो अंगरेज बन सके, न भारतीय रह पाये। शराब पीना, गोमांस खाना और उल्लंग कामाचार में मस्त रहना, इन्हीं आदतों को अपना कर वे अपने को यूरोप का समकक्ष मानने लगे थे। डाक्टर राधाकृष्णन ने लिखा है कि "उनकी आवाज यूरोप की आवाज की प्रतिध्वनि बन गयी, उनका जीवन यूरोप से लिया गया उद्धरण बन गया और उनके भीतर जो रूह थी, वह बिगड़ कर कोरा दिमाग बन गयी। इससे भी बुरी बात यह हुई कि उनके भीतर जो स्वतंत्र आत्मा थी, उसने भोग की दासता स्वीकार कर ली, वह चीजों का गुलाम बन गयी"।

कोई आश्चर्य नहीं कि जनता के हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वह आधुनिकता के हर पहलू को सन्देह से देखने लगी और सोचने लगी कि पाश्चात्य सभ्यता का सोना भी ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि उसके भीतर कहीं-न-कहीं खोट जरूर होगी। अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों ने दुराचार के इतने अधिक दृष्टान्त उपस्थित किये कि जनता की आँखों में अगरेजी शिक्षा ही शंका की वस्तु बन गयी। उस समय अंगरेजी पढ़े-लिखे लोग अपने को आधुनिक और प्रगतिशील समझते थे। किन्तु, उनके आचरण इतने उच्छृंखल थे कि आधुनिकता भारत वासियों की दृष्टि में बिलकुल हेय और तिरस्करणीय हो गयी। यह आघात

इतना भयानक और गंभीर था कि देश आजतक भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका है। जनता के अवचेतन में यह घाव इतनी अधिक गहराई में चला गया कि आज भी कोई आधुनिक वस्तु या विचार जनता के सामने आ जाय, तो वह घबराने लगती है । उन्नीसवीं सदी के आधुनिकतावादियों ने यदि अपना चरित्र ठीक रखा होता तो जनता आधुनिकता की ओर चलने में उतनी नहीं झिझकती जितनी वह आज झिझक रही है।

भारतीय जनता का अवचेतन आध्यात्मिक आदर्शों से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि स्वेच्छा से वह साम्यवाद का भी वरण करना नहीं चाहती, यद्यपि यह प्रत्यक्ष है कि हमारी जनता बहुत गरीब है और साम्यवाद का यह स्वभाव है कि गरीबों को वह धोखा कभी नहीं देता। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि साम्यवादी लोग नास्तिक क्यों है? वे हमारी आध्यात्मिक परंपरा की निन्दा क्यों करते हैं?

यही वह पृष्ठभूमि है, जिस पर भारतीय राष्ट्रीयता को परखा जाना चाहिए। यही वह कारण है, जिससे यह समझा जा सकता है कि श्री अरविन्द को राजनीति में क्यों आना पड़ा। वे तो महान् कवि, विराट् दार्शनिक और महत्तम योगी बनने को उत्पन्न हुए थे। इससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि यह निर्णय करना कठिन क्यों है कि भारत को मुक्ति दिलानेवाले महापुरुष महात्मा गांधी राजनीतिज्ञ थे या सन्त थे। इससे दुनिया के उन लेखकों को भी सबक लेना चाहिए, जो भारत को उसी दृष्टि से समझना चाहते हैं, जिस दृष्टि का प्रयोग वे पश्चिम के देशों को समझने के लिए करते हैं। भारत के वर्तमान और भावी शासकों के लिए भी यह चेतावनी की बात है। भारतीय जनता के चिपोषित आदर्शों के साथ अगर उन्होंने खिलवाड़ किया, तो जनता उसका बदला उन्हीं के सिक्कों में चुकायेगी। और अगर उन्होंने उन आदर्शों को बर्बाद करने की कोशिश की, जिन्हें जनता ने बड़ी से बड़ी मुसीबतों के समय भी संभाल कर रखा है, तो जनता भी शासकों को बर्बाद करने से नहीं चूकेगी। हमें बराबर यह याद रखना चाहिए कि जैसे हिन्दू धर्म अपरिभाषेय है, वैसे ही भारत की भी परिभाषा नहीं दी जा सकती।

इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ कि विदेशी जातियों और विदेशी संस्कृतियों ने भारत के धर्म और संस्कृति पर भयानक आक्रमण किये, किन्तु भारत हर बार उन हमलों से जूझ कर साबित निकल आया। और अँगरेजियत के हमले के बाद भी ऐसा ही हुआ। शरीर के धरातल पर तो भारत अंगरेजों का गुलाम था, किन्तु आत्मा के धरातल पर वह ईसाइयत, अंगरेजियत और यूरोपीय बुद्धिवाद से डट कर लोहा ले रहा था। हमारा पहला राष्ट्रीय अन्दोलन आतंकवादियों का आन्दोलन नहीं था, कांग्रेस का आन्दोलन नहीं था, बल्कि वह सांस्कृतिक और वैचारिक आन्दोलन था, जिसकी उत्पत्ति ब्राह्म समाज और आर्यसमाज की प्रेरणा से हुई थी। हमारे पहले राष्ट्रीय नेता भी न तो तिलकजी थे, न महात्मा गांधी, न जवाहरलाल; बल्कि वे राजा राममोहन राय थे, परमहंस रामकृष्ण थे, स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द थे। इन नेताओं की आध्यात्मिकता प्रबल थी, बौद्धिक शक्ति महान् थी और आत्मबल अत्यन्त प्रखर था। उन्होंने अपनी सारी शक्तियों को भारत की आत्मा की रक्षा के कार्य में लगा दिया। वे हमारी श्रद्धा के अधिकारी इसलिए हैं कि जो लड़ाई उन्होंने लड़ी, उसमें वे जीत गये। जब विज्ञान और बुद्धिवाद का उदय हुआ, संसार के प्रायः सभी देशों में अतीत और वर्तमान के बीच संघर्ष छिड़ गया और प्रायः सभी देशों में वर्तमान जीता और अतीत हार गया। केवल भारत में वह आज भी जोरों से युद्ध कर रहा है। आधुनिकता को भारत में फैलने में कठिनाई हो रही है, क्योंकि भारत आधुनिकता के उन उपकरणों को आत्मसात करने को तैयार नहीं है, जो उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। आधुनिकता अमित वरदान नहीं है। जब तक वह अपने कई दुर्गुणों से मुक्त नहीं हो जाती, तबतक भारत सर्वतोभावेन उसे स्वीकार नहीं करेगा। और वह जब भारत को स्वीकार्य हो जायगी, तभी वह समस्त मनुष्य जाति के लिए वरदान मानी जायेगी।

जब भारत संस्कृति के क्षेत्र में अपनी लड़ाई लड़ रहा था और वह विजय बिन्दु के पास पहुँच चुका था, तभी इस सांस्कृतिक संघर्ष से हमारी राजनैतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। लेकिन यह राष्ट्रीयता याचनापन्थी और भीरु भी थी। उन दिनों की कांग्रेस नरमदलीय लोगों के हाथ में थी और ये नरमदलीय नेता कोई ऐसी बात बोलना नहीं चाहते थे, जिससे ब्रिटिश सरकार नाराज हो या नेताओं की पद-प्रतिष्ठा और सुरक्षा पर कोई खतरा आये। वे मामूली सुधारों के लिए सरकार की सेवा में दरखास्त भेजने की नीति में विश्वास करते थे तथा अपनी बात को ताकत के साथ कहने की निर्भीकता उनमें नहीं थी। कुछ नेता इस नियम के अपवाद भी थे। किन्तु उनकी बात कांग्रेस में चलती नहीं थी। ऐसे विरले नेताओं में सबसे बड़ा नाम लोकमान्य तिलक का था, जो अपने समय के सबसे बड़े आदमी थे। जनता के अन्तर्मन में असंतोष था, उत्साह था, कुछ कर गुजरने की उमंग थी, लेकिन देश में उस व्यक्ति का सर्वथा अभाव था, जो जन-मानस की इस बेचैनी को समझ सके, और अभिव्यक्ति दे कर उसे और घधका सके।

तब भारतीय क्षितिज पर एक पुण्यात्मा महापुरुष का उदय हुआ, जिसका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल और

पवित्र था, जिसकी बौद्धिक शक्ति इतनी ऊँची और महान् थी कि उसका जोड़ संसार में शायद ही कभी देखा गया हो, जो कांग्रेस की राजनीति को आमूलचूल बदल डालने की उमंग से उच्छल था, जो उस दरवाजे को खोलने के लिए बेचैन था, जिसके पीछे जनता का उत्साह पछाड़े खा रहा था।

यह महापुरुष श्री अरविन्द घोष थे।

श्री अरविन्द के पिता का नाम डाक्टर कृष्णधन घोष था। वे विलायत में डाक्टरी पढ़कर भारत वापस आये थे। उस समय यूरोपीय सभ्यता अपनी उन्नति के शिखर पर थी। डाक्टर कृष्णधन घोष यूरोप के इस बुद्धिवादी रूप के बड़े प्रेमी थे और चाहते थे कि भारत भी यूरोप के समान ही बुद्धिवादी और अध्यवसायी होने का प्रयास करें। वे भारत की रहस्यवाद को शंका से देखते वे और यह समझते थे कि ये रहस्यवाद का प्रेमी होने के कारण ही भारत आलसी, शिथिल और अकर्मण्य हो गया है। अतएव वे अपने बच्चों का लालन पालन तथा शिक्षा-दीक्षा यूरोपीय ढंग से करवाना चाहते थे। उनकी खास चिन्ता यह थी कि उनके बच्चों पर भारत की रहस्यवादी परंपरा की छाया भी नहीं पड़े। उन्होंने इस बात के लिए काफी चौकसी बरती थी कि उनके बच्चे भारत की कोई भी भाषा न सीखें और भारत की परंपरा का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं हो। सात वर्ष की उम्र तक श्री अरविन्द दार्जिलिंग के एक विदेशी स्कूल में रखे गये थे और सातवें वर्ष के पूरा होते-होते पिता उन्हें इंग्लैण्ड ले गये और वहाँ उन्हें किसी अंग्रेज़ परिवार में छोड़ आये। चौदह वर्षों के बाद जब श्री अरविन्द इंग्लैण्ड से भारत लौटे तब उनकी उम्र इक्कीस वर्ष की थी। कहते हैं, तब तक न तो वे भारत की कोई भाषा जानते थे, न भारत की परंपरा का उन्हें कोई विशेष ज्ञान था। भारत की भाषाएं सीखने का काम उन्होंने तब आरंभ किया, जब सन् १८९३ ई० में वे इंग्लैण्ड से वापस आकर बड़ौदा में रहने लगे।

श्रीमद्भगवद्गीता का अंगरेजी अनुवाद पढ़ने के पूर्व वे बादलेयर, मेलामें और रेम्बू को मूल फ्रेंच में पढ़ चुके थे और भारतीय साहित्य में प्रवेश करने से बहुत पहले उन्होंने अंगरेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन और ग्रीक भाषाओं के साहित्य का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पीछे उन्होंने जब संस्कृत सीखी, तब संस्कृत पर भी उनका ऐसा असाधारण अधिकार हो गया कि उन्होंने वेदों पर भाग्य लिखा और उपनिषदों की व्याख्याएं लिखी, जिनका विद्वानों के बीच बड़ा सम्मान है।

पिता ने चाहा था कि श्री अरविन्द भारतीय बिलकुल ही न बनने पायें, किन्तु श्री अरविन्द प्रखर रूप से भारतीय बन गये। पिता ने चाहा था कि श्री अरविन्द पर रहस्यवाद की कहीं से छाया भी न पड़े, किन्तु श्री अरविन्द स्वयं उच्चतम कोटि के रहस्यवादी हो गये।

श्री अरविन्द के आन्तरिक व्यक्तित्व के भारतीयकरण के खिलाफ जो चौकसी बरती गयी थी, भगवान् नहीं चाहते थे कि वह चौकसी कामयाब हो। और हुआ भी वही, जो ईश्वर को मंजूर था। मैक्समूलर ने 'सैक्रेड बुक्स आव द ईस्ट' नाम से जो अनेक पुस्तकें लिखी थी, उन्हें श्री अरविन्द ने अंगरेजी में पढ़ा और इंग्लैण्ड प्रवास के समय ही भारत की आत्मा का एक अस्पष्ट रूप उन्हें दिखायी पड़ गया था। जब श्री अरविन्द इंगलैंड में थे, उस समय आयरलैण्ड में स्वतंत्रता का आन्दोलन चल रहा था। श्री अरविन्द की इस आन्दोलन के प्रति गहरी सहानुभूति थी वे शायद यह सपना भी देखने लगे थे कि भारत लौटने पर मैं भी अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए ऐसा ही आन्दोलन चलाऊँगा । श्री अरविन्द ने आइ०सी०एस० की भी परीक्षा दी थी और उस परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए थे, किन्तु घुड़सवारी की परीक्षा के दिन वे गैरहाजिर हो गए। ऐसा उन्होंने यही सोचकर किया होगा कि आई.सी.एस. की नौकरी में फँस जाने पर स्वतंत्रता आन्दोलन में काम करना असम्भव हो जाएगा।

देश-भक्ति का बीज उनके हृदय में बचपन में ही अंकुरित हो चुका था। यह बात उस ऐतिहासिक पत्र से स्पष्ट हो जाती है, जिसे श्री अरविन्द ने सन् 1905 ई. में अपनी पत्नी को लिखा था :

'जब कोई दैत्य माता की छाती पर बैठकर उसका रक्त पान कर रहा हो, तब बेटे का क्या कर्तव्य होना चाहिए? क्या वह निश्चिन्त मन से भोजन करेगा? स्त्री और बच्चों को साथ लेकर आनन्द मनाएगा, अथवा वह अपनी माँ को दैत्य के कब्जे से छुड़ाने के लिए दौड़ेगा? मैं जानता हूँ कि इस गिरी जाति को ऊपर उठाने की शक्ति मुझमें है। यह शक्ति भौतिक नहीं है कि मैं तलवार या बन्दूक उठाकर शत्रु से लड़ूँ। मैं तो ज्ञान की शक्ति का प्रयोग करूँगा। क्षत्रिय की शक्ति ही एकमात्र शक्ति नहीं है; शक्ति ब्राह्मण में भी होती है, किन्तु उसका आधार ज्ञान होता है। और यह भावना मेरे लिए नई नहीं है। मेरा तो जन्म ही इस भावना के साथ हुआ था। यही भावना है, जो मेरे जीवन का मिशन और उद्देश्य है। इसी महान ध्येय को प्राप्त करने के लिए। भगवान ने मुझे पृथ्वी पर भेजा है। 14 साल की उम्र में यह भावना मेरे भीतर अंकुरित हुई थी और 18 वर्ष की आयु में तो उसकी जड़ गहराई में चली गई और वह अभेद्य हो गई।'

श्री अरविन्द मानते थे कि राष्ट्रीयता कोई राजनीतिक

आन्दोलन नहीं है, वह तो हमारा धर्म है। उनका यह भी विश्वास था कि राष्ट्रीय आन्दोलन के असली नेता स्वयं भगवान होते हैं। कालक्रम में जो नेता प्रकट होते हैं, उनकी नियुक्ति स्वयं भगवान ही करते हैं।

बुद्धिवादियों को यह बात विचित्र-सी लगेगी और यह भी सम्भव है कि कुछ राष्ट्रीय आन्दोलनों पर श्री अरविन्द की यह उक्ति फिट नहीं बैठे। किन्तु जहाँ तक श्री अरविन्द का प्रश्न है, यह उक्ति उन पर पूरी तरह लागू होती है, क्योंकि श्री अरविन्द का जन्म राजनीति के लिए नहीं, उससे कहीं ऊँचे और महत्तर कार्य के लिए हुआ था। फिर भी भगवान ने उन्हें पाँच साल की छोटी अवधि के लिए राजनीति में भेजा और फिर उन्हें एकान्त में वापस बुला लिया। किन्तु इन्हीं पाँच वर्षों में श्री अरविन्द ऐसी-ऐसी निर्भीक बातें बोल गए, जो उनसे पूर्व बोली नहीं गई थीं। भारत के हृदय और मस्तिष्क को उन्होंने उस तरह से मथ डाला, जिस तरह वह पहले कभी भी मथा नहीं गया था और अन्त में उन्होंने वह मार्ग तैयार कर दिया, जिस मार्ग से भारत का स्वतंत्रता संग्राम आगे बढ़नेवाला था।

यहाँ आकर, स्वभावतः ही, हमें गांधी जी की याद हो आती है। क्या महात्मा गांधी उसी मार्ग पर थे, जिसका संधान श्री अरविन्द ने किया था? गांधी जी ने क्या कुछ ऐसे कार्य नहीं किए, जिनका खयाल श्री अरविन्द को स्वप्न में भी नहीं आया होगा? श्री अरविन्द के कार्यों में कहाँ तक गांधी जी का पूर्वाभास था?

जिस तरह श्री अरविन्द भगवान के द्वारा नियुक्त नेता थे, उसी प्रकार गांधी जी भी भगवान के द्वारा ही भेजे गए थे। जब श्री अरविन्द का उदय उग्र राष्ट्रीयता की प्रज्वलित, उद्दाम शिखा के रूप में हुआ, गांधी जी भारतवर्ष में नहीं थे। वे दक्षिण अफ्रीका में ठीक उसी कार्यक्रम का प्रयोग कर रहे थे, जिसका आख्यान और प्रचार श्री अरविन्द बंगाल में कर रहे थे। उनका प्रयोग 'पैसिव रेजिस्टेंस' का प्रयोग था, जिसे वे सत्याग्रह कहते थे और दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी भी उसी शक्ति के खिलाफ युद्ध कर रहे थे, जिसे श्री अरविन्द भारत में ललकार रहे थे। गांधी जी ने सत्याग्रह का विचार श्री अरविन्द से लिया था या श्री अरविन्द ने गांधी जी से, इस विचिकित्सा में जाना ही फिजूल है। श्री अरविन्द और गांधी जी के सामने जो परिस्थिति थी वह लगभग समान थी, अतएव समाधान भी दोनों को लगभग एक समान ही सूझा। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में श्री अरविन्द ने जो कई कार्यक्रम चलाए थे, 1920 में और उसके बाद गांधी जी ने उन्हीं कार्यक्रमों को जोर से चलाया और उनका विस्तार भी किया। श्री अरविन्द ने जो बीज गिराये थे, गांधी जी के नेतृत्व में उन्हीं बीजों से निकले हुए वृक्ष महाकार हो गए। स्वदेशी आन्दोलन के समय आजमाए गए कार्यक्रमों को गांधी जी के नेतृत्व में नये आयाम प्राप्त हुए और उनका प्रयोग, सच्चे अर्थों में, राष्ट्रीय धरातल पर किया गया। यह भी कहा जा सकता है कि गांधी जी ने पुराने कार्यक्रमों को नया रूप दिया, नई महिमा प्रदान की और उनके भीतर नये अर्थ भी भरे। साथ ही उन्होंने कई नये कार्यक्रमों का भी आविष्कार किया।

सन् 1905 में श्री अरविन्द ने अपनी पत्नी को जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि आदमी को जो भी योग्यता मिलती है, प्रतिभा और संस्कार मिलता है; विद्या, ज्ञान और धन प्राप्त होता है, वह सब का सब परमेश्वर का है। हमें अपने निजी उपयोग के लिए उतना ही रखना चाहिए, जो परिवार - पालन के लिए नितान्त आवश्यक हो, जिसके बिना हमारी न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती हो। बाकी सारा धन हमें भगवान को अर्पित कर देना चाहिए, क्योंकि उन्हीं का उस पर अधिकार है। अगर मैं सारी कमाई अपने क्षुद्र व्यक्तित्व पर खर्च करता हूँ, अपने सुख और आराम में लगाता हूँ, तो वास्तव में मैं चोर हूँ।'

यह विशुद्ध गांधीवादी विचार है और इसके भीतर गांधी जी के ट्रस्टीशिप वाले सिद्धान्त के बीज प्रभूत मात्रा में मौजूद हैं। सभी संत, कुछ मामलों में, एक ही समान सोचते हैं। गांधी जी ने अपने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त से बड़ी आशा लगा रखी थी। लेकिन उस सिद्धान्त पर अब कोई नहीं चलता, यहाँ तक कि पब्लिक सेक्टर भी नहीं, जिसे सरकार अपनी चहेती संस्था मानती है।

विदेशी चीजों का बहिष्कार स्वदेशी आन्दोलन के समय भी किया गया था और गांधी जी के कार्यक्रम में भी उसका ऊँचा स्थान रहा। लेकिन पहले जो वस्तु स्वदेशी थी, गांधी जी ने उसे खद्दर बना दिया। गांधी युग में आकर राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों की संख्या काफी बढ़ गई, लेकिन कुछ राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय स्वदेशी आन्दोलन के समय बंगाल में भी खोले गए थे। जब श्री अरविन्द ने बड़ौदा छोड़ा, वे एक राष्ट्रीय महाविद्यालय के ही प्राचार्य बनकर कलकत्ता आए थे। लेकिन यह बात जरूर हुई कि श्री अरविन्द ने जिस शक्ति को ब्राह्म तेज कहा था, गांधी जी ने उसे अहिंसा का कठोर व्रत बना दिया। श्री अरविन्द का ब्राह्म तेज बिलकुल परशुरामी तेज नहीं, तो कम-से-कम परशुराम के समीप पड़ता था। लेकिन गांधी जी ने परशुराम की जगह बुद्ध, महावीर और ईसा को बिठला दिया। 'इवनिंग टाक्स' से पता चलता है कि गांधी जी की अहिंसा को श्री अरविन्द ने कभी भी स्वीकार नहीं किया और बराबर वे

उसका मजाक उड़ाते रहे।

अहिंसा के सिद्धान्त में श्री अरविन्द का विश्वास ही नहीं था। नीरदवरण ने अपनी पुस्तक 'टाक्स विद श्री अरविन्दो' में श्री अरविन्द की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति का उल्लेख किया है: 'मेरा विचार तो सारे देश में खुली सशस्त्र क्रान्ति करने का था। लेकिन लोग उस समय जो कर बैठे, वह बिलकुल बचकाना काम था, जैसे मैजिस्ट्रेटों को पीटना। पीछे चलकर तो यह प्रवृत्ति आतंकवाद और डकैती की ओर चली गई, जिसकी बात मैंने सोची भी नहीं थी। हम तो सारे देश को जगाकर गुरिल्ला पद्धति से अंग्रेजों के साथ युद्ध करना चाहते थे, जैसा आयरलैंड में सिनफिन वालों ने किया था। लेकिन अभी जो सैनिक स्थिति है, उसमें तो ऐसी बातें मुमकिन ही नहीं हैं और कोई तब भी साहस करें, तो उसकी असफलता निश्चित है।'

यही कारण था कि श्री अरविन्द ने हिंसा का मार्ग छोड़कर अप्रत्यक्ष अवरोध (पैसिव रेजिस्टेंस) की नीति का समर्थन किया। यह भी एक प्रकार की अहिंसक नीति ही थी, किन्तु अहिंसा को श्री अरविन्द धर्म नहीं, नीति ही मानते थे। इस प्रसंग में भी यह कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द में गांधी जी का नहीं, गांधी-युग का पूर्वाभास था, क्योंकि गांधी जी तो अहिंसा को अपना धर्म मानते थे, किन्तु उनके लगभग सभी सहकर्मी और अनुयायी अहिंसा को कांग्रेस की नीति ही समझते थे।

उग्र राष्ट्रीयता का व्याख्याता होने के कारण श्री अरविन्द के इर्द-गिर्द ऐसे नौजवान भी इकट्ठे हो गए थे, जिनका विश्वास केवल हिंसा में था। इससे स्थिति यह बन गई कि नरम दल के नेता श्री अरविन्द को भी हिंसा का समर्थक मानने लगे।

नरल दल के नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले उग्र राष्ट्रवादियों से बहुत नाराज थे। उनकी धारणा थी कि उग्र राष्ट्रवादी लोग शायद हिंसक क्रान्ति की तैयारी कर रहे हैं। एक बार अपने किसी लेख या भाषण में उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह लांछन उग्रतावादियों पर लगा भी दिया। श्री अरविन्द इन्हीं उग्रतावादियों के नेता थे, अतएव गोखले का खंडन करना उनके लिए अनिवार्य हो गया। गोखले को उत्तर देते हुए उस समय श्री अरविन्द ने लिखा था : 'हमने जनता से कहा है कि चाहे जिस प्रकार का भी स्वराज्य हम चाहते हों, उसे प्राप्त करने का शान्तिमय साधन भी है। हमने कहा है कि अपनी सहायता आप करके यानी असहयोग (पैसिव रेजिस्टेंस) के द्वारा हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि कुछ बातों में हम इस देश की सरकार के साथ तब तक सहयोग नहीं करेंगे, जब तक वह चीज हमें हासिल न हो जाए, जिसे हम अपना अधिकार समझते हैं। दूसरी बात यह है कि अगर हम पर अत्याचार किया जाएगा, सरकार अगर हम पर दमन का चक्र चलाएगी, तब भी उसका सामना हम हिंसा से नहीं, सहनशक्ति से करेंगे, असहयोग से करेंगे, कानूनी तरीकों से करेंगे। हमने अपने नौजवानों से यह नहीं कहा है कि जब तुम्हारा दमन किया जाए, तुम प्रतिशोध से काम लो। हमने यही कहा है कि जब तुम पर अत्याचार किए जाएँ, तुम उन्हें बर्दाश्त करो। इस देश के लोगों को हम असहयोग का मार्ग दिखा रहे हैं। यही वह एकमात्र मार्ग है, जिस पर चलकर इस देश की जनता कानून को भंग किये बिना, हिंसा की शरण गए बिना, अपनी जायज उमंगों और उचित अभिलाषाओं को पूर्ण कर सकती है।"

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कल्पना सबसे पहले श्री अरविन्द ने ही की थी कि असहयोग और सत्याग्रह ही इस देश में अंग्रेजों से लड़ने के सबसे कारगर हथियार हैं, यद्यपि 'सत्याग्रह' शब्द श्री अरविन्द का आविष्कार नहीं है। 'सत्याग्रह' शब्द की ईजाद करके गांधी जी ने उसके भीतर जो अर्थ भरा, उसी अर्थ को संकेतित करने के लिए श्री अरविन्द 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्द का प्रयोग करते थे। इसलिए श्री अरविन्द्र को भारतीय राष्ट्रीयता का पैगम्बर या अग्रदूत कहना अत्युक्ति की बात नहीं है। श्री अरविन्द को यह विरुद स्वयं श्री चित्तरंजन दास ने प्रदान किया था, जब अलीपुर बम वाले मुकदमे में वे श्री अरविन्द की ओर से पैरवी कर रहे थे।

लेकिन गांधी जी और श्री अरविन्द के बीच सबसे बड़ा अन्तर यह था कि गांधी जी अहिंसा को धर्म मानते थे और उसमें किसी भी तरह की मिलावट उन्हें पसन्द नहीं थी। श्री अरविन्द के लिए अहिंसा धर्म नहीं, आपद्धर्म थी। जब श्री देवदास गांधी ने श्री अरविन्द से यह पूछा कि अहिंसा के बारे में आपका क्या विचार है, तब श्री अरविन्द ने एक दूसरा प्रश्न पूछकर देवदास जी को चुप कर दिया, 'मान लो कि अफगान लोग तुम्हारे देश पर चढ़ाई कर दें, तो अहिंसा से तुम उनका मुकाबला कैसे करोगे?" हृदय परिवर्तन की नीति के बारे में भी श्री अरविन्द को सन्देह था। वे कहते थे कि जिसे तुम हृदय-परिवर्तन कहते हो, वह दबाव का परिणाम है, 'कोअर्सन' का नतीजा है।

गांधी जी और श्री अरविन्द के बीच समानता की एक बात यह भी है कि दोनों-के-दोनों नेता ईश्वर को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। गांधी जी ने यह बात अपनी आत्मकथा या किसी लेख में लिखी है : 'आइ वांट टू सी गॉड फेस टू फेस।' और यही बात श्री अरविन्द ने अपनी पत्नी को पत्र में लिखी थी।

गांधी जी को भारत की स्वाधीनता का मुख्य निर्माता घोषित करके इतिहास ने न्याय और औचित्य का ही पालन किया है। लेकिन स्वतंत्रता के युद्ध में श्री अरविन्द का योगदान भी प्रायः समान महत्त्व का था। कांग्रेस तो दरखास्त भेजकर सरकार से भीख माँगने वाली संस्था थी । उसकी इस भीरु नीति को हटाकर उसके भीतर वीरता का भाव भरने का आन्दोलन श्री अरविन्द ने ही चलाया था। वही आन्दोलन गांधी जी के आगमन के साथ सफल हो गया और कांग्रेस मिमियाने वाली संस्था से बढ़कर गरजनेवाली संस्था बन गई । दूसरी बात यह है कि भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए, इस ध्येय की भी घोषणा और परिभाषा सबसे पहले श्री अरविन्द ने ही की थी। किन्तु यह ध्येय भी गांधी-युग में कोई दस वर्ष तक हवा में मँडलाता रहा, नौजवानों के दिलों में सुलगता रहा। अन्त में सन् 1930 ई. में कांग्रेस ने उसे तब स्वीकार किया, जब युवक हृदय सम्राट पं. जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति हुए।

सन् 1899 ई. में श्री अरविंद की उम्र कुल इक्कीस वर्ष की थी और वे तुरन्त इंग्लैंड से वापस आए थे। लगता है, इंग्लैंड में रहते समय ही श्री अरविन्द के भीतर यह बेचैनी शुरू हो गई थी कि भारतीय काँग्रेस की नीति ठीक नहीं है। अतएव सारे देश को जगाकर, उसे पूर्ण स्वतंत्रता का ध्येय बताकर कांग्रेस को निर्भीक देशभक्तों की संस्था बनाना आवश्यक है। अभी भारत आए उन्हें केवल छह मास हुए थे कि बम्बई के 'इन्दुप्रकाश' में उन्होंने 'पुराने दीपों की जगह नये दीप नाम से एक लेखमाला आरम्भ कर दी, जिसमें कांग्रेस और उसके तत्कालीन नेताओं की कठोर और निर्भीक आलोचना थी। इन लेखों को पढ़कर कांग्रेस के नेता डरने और घबराने लगे। अतः महादेव गोविन्द रानाडे ने 'इन्दुप्रकाश' के प्रकाशक से कहा कि अगर ऐसे लेख तुम छापते रहे, तो एक-न-एक दिन मुसीबत में फँस जाओगे। निदान, 'इन्दुप्रकाश' ने उस लेखमाला को छापना बन्द कर दिया। इस लेखमाला के एक लेख में श्री अरविन्द ने लिखा था कि 'कांग्रेस के बारे में मुझे यह कहना है कि इसके उद्देश्य गलत हैं और जिस भाव से कांग्रेस उन उद्देश्यों की ओर बढ़ना चाहती है, वह सच्चाई और ईमानदारी का भाव नहीं है। कांग्रेस ने इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जो तरीके चुने हैं, वे तरीके भी गलत हैं और जिन नेताओं में कांग्रेस का विश्वास है, वे नेता भी सही किस्म के नेता नहीं हैं। जिस कांग्रेस को हम राष्ट्रीय कहते हैं, वह न तो राष्ट्रीय हैं, न राष्ट्रीय बनने के प्रयास में हैं।'

श्री अरविन्द ने यह भी लिखा था कि 'जो कांग्रेस जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, केवल एक, और वह भी सीमित वर्ग की नुमाइन्दगी करती है, उसे राष्ट्रीय कहना किसी भी तरह ईमानदारी की बात नहीं है। हमारे सामने जो परिस्थिति खड़ी है, उसकी असली कुंजी सर्वहारा के पास है। जो सर्वहारा आज अज्ञान के अन्धकार और मुसीबत में पड़ा है, वही हमारी एकमात्र आशा और आश्वासन है, वही हमारे भविष्य का अवलम्ब है.' यह शायद पहली बार था, जब हमारे देश की राजनीति में सर्वहारा यानी 'प्रोलेतेरियत' शब्द का उल्लेख किया गया था। अपने लेखों के द्वारा श्री अरविन्द ने एक-पर-एक जो अनेक बम फेंके, उनके चलते देश की जड़ता और निष्क्रियता की जड़ें हिल गई और जो निर्भीक विचार उन्होंने प्रकट किए, उनसे उग्र राष्ट्रीयता का भाव आप-से-आप उभरने लगा। श्री अरविन्द के निर्भीक विचारों का प्रभाव यह हुआ कि जो भी नौजवान निर्भीक होकर सोचते थे, वे परस्पर समीप आने लगे और देश में नरम दलीय लोगों के खिलाफ एक गरम दल तैयार होने लगा। नरम दल पर इस गरम दल की निर्णायक जीत तब हुई, जब कांग्रेस गांधी जी के नेतृत्व में आई और गरम दल के कारवां को आगे बढ़ते देखकर नरम दल के नेता कांग्रेस से अलग हो गए। जहाँ तक सेक्यूलरिज्म की बात है, मेरा ख्याल है, गांधी जी उस शब्द के कोषगत अर्थ के अनुसार सेक्यूलर नहीं थे, क्योंकि सेक्यूलर शब्द का अर्थ अध्यात्म-विरोधी होता है। हम ज्यादा-से-ज्यादा यही कह सकते हैं कि वे सभी धर्मों को समान समझते थे, बल्कि उन्हें अपना ही धर्म मानते थे। किन्तु श्री अरविन्द की राजनीति सेक्यूलर नहीं, आध्यात्मिक थी। अपने लेखों और भाषणों में वे खुलकर कहते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता भगवान हैं वे यह भी कहते थे कि भारत के सनातन धर्म को अपनी ही रोशनी से चमकना चाहिए और उस पर हमें पाश्चात्य जगत् के विचारों और योजनाओं के बादलों को छाने नहीं देना चाहिए। सन् 1920 ई. में जोसेफ बैपटिस्टा के पत्र के उत्तर में उन्होंने लिखा था कि 'मेरे लिए सेक्यूलर नाम की कोई चीज नहीं है। मनुष्य की सभी चेष्टाओं को मैं आध्यात्मिक जीवन में समाहित करना चाहता हूँ और अभी तो राजनीति की आवश्यकता सबसे प्रधान है।'

सन् 1904 ई. में श्री अरविन्द ने भवानी मन्दिर का घोषणा-पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत का विनाश नहीं होगा क्योंकि मनुष्य जाति की नाना शाखाओं में से भारत ही सबसे प्रधान है और मनुष्य जाति की जो सबसे बड़ी नियति है, सबसे गौरवपूर्ण ध्येय है, उसे भारत ही चरितार्थ करेगा। समस्त संसार अपना भावी धर्म भारत से ही प्राप्त करेगा और वही धर्म विभिन्न धर्मों, दर्शनों और विज्ञान को समन्वित करके मनुष्य जाति को एक बनाएगा।'

उस घोषणा-पत्र में श्री अरविन्द ने यह भी कहा था कि 'भारत में जब भी शक्ति का उदय हुआ है, उसका स्रोत धार्मिक जागरण रहा है। जब-जब इस देश में धर्म की पूरी जागृति हुई, तब-तब यह देश शक्ति-सम्पन्न हुआ है और जब-जब धर्म की जागृति में कमी रही है, हमारी राष्ट्रीय शक्ति भी क्षीण रही है। अगर अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए हम विदेशी तरीकों का इस्तेमाल करेंगे, हमारी प्रगति धीमी रहेगी, कष्टपूर्ण रहेगी, अधूरी रहेगी और हम अपने ध्येय तक पहुँच भी नहीं पाएँगे तब हम उस मार्ग को क्यों नहीं पकड़ें, जिसे भगवान ने हमारे लिए प्रशस्त कर रखा है?" संसार में आध्यात्मिक क्रान्ति लाने का जो दर्शन श्री अरविन्द ने आगे चलकर तैयार किया, उसके बीज भवानी मन्दिर की योजना में मौजूद थे।

श्री अरविन्द सेक्यूलर नहीं, आध्यात्मिक नेता थे और भारत के राजनीतिक आन्दोलन को भी वे आध्यात्मिक मार्ग पर चलाना चाहते थे, क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत को इसलिए स्वाधीन होना है कि वह सारी मानवता को अध्यात्म का सन्देश पहुँचा सके।

किन्तु भारत का स्वाधीनता आन्दोलन अन्ततः उस मार्ग पर नहीं रहा, जिसकी कल्पना तिलक और श्री अरविन्द ने की थी अथवा जो स्वयं गांधी जी को पसन्द था। सन् 1938 ई. के दिसम्बर महीने में श्री अरविन्द ने कहा था : 'भारतवर्ष अब यूरोपीय समाजवाद की ओर जा रहा है, जो उसके लिए खतरनाक है। हम लोग भारत की प्रकृति और शक्ति को भारतीय पद्धति से जगाना चाहते थे। उस समय जो चीज जागी थी, वह भारत की आत्मा थी और उसने बड़े-बड़े व्यक्तियों को उत्पन्न किया था। उस समय भारतीय आन्दोलन के नेता या तो योगी थे या योगियों के शिष्य थे।'

29 सितम्बर, 1905 ई. के दिन बंगाल का विभाजन कानून का तथ्य बन गया और इस कानून के विरोध में सारा बंगाल एक होकर विद्रोह कर उठा। जैसे-जैसे जनता के भीतर क्रान्ति का जोश बढ़ा, वैसे-ही-वैसे सरकारी दमन चक्र की भीषणता भी बढ़ने लगी। उस आन्दोलन के दौरान जो राष्ट्रीय कार्यक्रम चालू किया गया, उसमें स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और विदेशी माल के बहिष्कार का प्रमुख स्थान था। इन्हीं कार्यक्रमों के अधीन कलकत्ते में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया तथा सन् 1906 ई. में श्री अरविन्द अन्तिम बार बड़ौदा छोड़कर इस महाविद्यालय के प्राचार्य पद को सुशोभित करने के लिए कलकत्ता आ गए।

प्राचार्य का काम केवल निमित्त मात्र था। वास्तव में कलकत ही श्री अरविन्द उग्र राष्ट्रवादियों के कर्णधार बन गए। उन्हीं दिनों श्री विपिनचन्द्र पाल ने 'वन्दे मातरम्' नाम से एक दैनिक पत्र निकाला था। इस पत्र के साथ श्री अरविन्द का प्रगाढ़ सहयोग भारतीय इतिहास को प्रभावित करने वाली महान घटना बन गया 'वन्दे मातरम्' के स्तम्भों के द्वारा श्री अरविन्द देश की सोई हुई शक्ति को इस प्रखरता से जगाने लगे, जिस प्रखरता से वह पहले कभी भी जगाई नहीं गई थी। देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भावों को इस तरह उभारने लगे, जैसे वे पहले कभी भी उभारे नहीं गए थे। श्री अरविन्द का नाम तो 'वन्दे मातरम्' में छपता नहीं था, किन्तु वह पत्र ही बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता बन गया और उसका प्रभाव बंगाल तक ही सीमित न रहकर सारे देश में फैलने लगा। 'वन्दे मातरम्' के भीतर आरम्भ से ही श्री अरविन्द का हाथ था। इस पत्र की निर्भीक नीति, प्रखर चिन्तन, स्पष्ट विचार, निर्दोष और शक्तिशालिनी शैली, तिलमिला देनेवाले व्यंग्य और शिष्ट मजाक ऐसे थे, जिनसे टक्कर लेने की शक्ति ऐंग्लो-इंडियन अखबारों में भी नहीं थी। कोई आश्चर्य नहीं कि दो-चार महीनों में ही श्री अरविन्द कुछ छात्रों के ट्यूटर के पद से उठकर सारे देश के महाशिक्षक और नेता बन गए।

श्री अरविन्द की शक्तिशालिनी, निर्भीक और प्रेरणादायिनी लेखनी के प्रताप से 'वन्दे मातरम्' जाग्रत् और उदयशील राष्ट्र का प्रवक्ता बन गया। समकालीन समस्याओं से जूझते-जूझते उसने देश में नये योद्धाओं की एक पूरी पीढ़ी ही उत्पन्न कर दी। इस पीढ़ी ने स्वतंत्रता-संग्राम में डटकर भाग लिया और अन्त में देश को स्वाधीन करने का भी श्रेय इसी पीढ़ी को प्राप्त हुआ। 'वन्दे मातरम्' के स्तम्भों द्वारा श्री अरविन्द ने बहुत शीघ्र सारे देश को जगा दिया, उसके भीतर प्रेरणा भर दी और उसे उठाकर अपने पाँवों पर खड़ा कर दिया। देश के करोड़ों निःशस्त्र एवं दुर्बल मानवों के भीतर श्री अरविन्द ने आत्मविश्वास की भावना जगा दी। वे अपनी स्वत्व-प्राप्ति के लिए बेचैन हो उठे एवं उनका आक्रोश श्री अरविन्द के भीतर से व्यक्त होने लगा। 'वन्दे मातरम्' में श्री अरविन्द के जो लेख प्रकाशित हुए, उनसे श्री अरविन्द के कई रूपों पर प्रकाश पड़ता है। वे भारत की जागृति के पैगम्बर थे, वे मूक और निरीह जनता के प्रवक्ता थे, वे क्रान्ति के पावरहाउस और उग्र राष्ट्रवादियों के सिपहसालार थे।

चूँकि श्री अरविन्द का नाम उनके किसी भी लेख के साथ नहीं छपता था, इसलिए सरकार यह जानने को व्याकुल थी कि आखिर कौन यह लेखक है, जो इतनी आग उगल रहा है

और ऐसी खूबी के साथ कि उसे कानून के शिकंजे में भी लाना मुश्किल है? लेकिन अन्त में सरकार के गुप्तचरों ने परदे को उठा दिया और सरकार को यह मालूम हो गया कि ये लेख और किसी के नहीं, श्री अरविन्द के हैं।

इसलिए अगस्त, 1907 ई. में सरकार ने श्री अरविन्द को गिरफ्तार कर लिया। किन्तु अभियोग चूँकि सिद्ध नहीं हो सका, श्री अरविन्द छोड़ दिये गए लेकिन इस मुकदमे ने देश का एक बड़ा भारी उपकार कर दिया। लोग समझ गए कि 'वन्दे मातरम्' के भीतर से श्री अरविन्द ही देश को झकझोर रहे थे। सो क्षणमात्र में श्री अरविन्द का नाम सारे देश में गूंज गया और जनता उनकी पूजा करने लगी। देश के कोने-कोने से प्रशंसा, प्रेम, श्रद्धांजलि और प्रशस्ति की धारा श्री अरविन्द की ओर दौड़ने लगी। यह घटना इतनी ऐतिहासिक और नाटकीय थी कि देश के सबसे बड़े जीवित कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर उससे अनुप्रेरित हो उठे और 'अरविन्द, लहो रवीन्द्रेर नमस्कार' शीर्षक से श्री अरविन्द पर उन्होंने एक काफी लम्बी कविता रच डाली। और अंग्रेजी के एक अखबार ने श्री अरविन्द का अभिनन्दन करते हुए लिखा : --

"जो लोग क्षण भर की तितली हैं, सुविधा और सुरक्षा के गुलाम हैं, उन्हें अगर श्री अरविन्द के बगल में खड़ा कर दिया जाए, तो ये लोग कितने छोटे और दयनीय नजर आएँगे?'

जब श्री अरविन्द बड़ौदा में थे, उनकी मुलाकात एक योगी से हुई जिनका नाम श्री भास्कर लेले था। लेले जी ने श्री अरविन्द को मनःशक्ति की क्रिया बताई। श्री अरविन्द का मन तीन दिनों की साधना में ही परिशान्ति की अवस्था को पहुँच गया। कहते हैं, श्री अरविन्द जहाँ भी जाते थे, पारखी उस शान्ति का अनुभव करते थे, जो उनकी आकृति से निःसृत होती थी। पारखियों को उस उच्चावस्था का भी बोध होता था, जहाँ से श्री अरविन्द के प्रवचन शान्तिमय गति से प्रवाहित होते थे। सार्वजनिक सभाओं में वे पेशेवर राजनीतिज्ञ की तरह नहीं बोलते थे, राजपुरुष के समान भी नहीं बोलते थे, उनका भाषण पैगम्बर की शैली में होता था, धर्म के रहस्य-ज्ञाता की शैली में होता था। उदाहरणार्थ एक भाषण में उन्होंने कहा था 'राष्ट्रीयता धर्म है, जो भगवान के यहाँ से आया। इस धर्म के द्वारा हम पूरे राष्ट्र में, अपने सभी देशवासियों के भीतर के स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं। हम इस प्रयास में हैं कि अपनी तीस करोड़ जनता के रूप में हम ईश्वर दर्शन की अनुभूति प्राप्त कर सकें।'

इसे पढ़कर ऐसा लगता है, मानो हम स्वामी विवेकानन्द की वाणी सुन रहे हों, जो पहले ही स्वर्गीय हो चुके थे, मानो हम गांधी जी की आवाज सुन रहे हों, जो दस साल बाद पधारने वाले थे। उग्र राष्ट्रवाद का जो व्यापक प्रचार श्री अरविन्द ने किया, उसके चलते कांग्रेस भीतर ही भीतर दो दलों में विभक्त होने लगी। जहाँ तक नरम दल का सम्बन्ध था, उसके नेता सर फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और रासबिहारी घोष के समान बड़े-बड़े लोग थे। उग्रतावादियों के बड़े नेता लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराव और श्री अरविन्द थे। उग्रतावादी इस कोशिश में थे कि कांग्रेस को नरम दलीय नेताओं के नेतृत्व से मुक्त करके उसे अपने कब्जे में ले लिया जाए। 1907 ई. के दिसम्बर महीने में सूरत में जो कांग्रेस हुई, उसमें दोनों दलों के बीच मुठभेड़ हो गई। जाहिरा प्रश्न वह था कि कांग्रेस का सभापति कौन हो : लोकमान्य तिलक या रासबिहारी घोष? किन्तु वास्तव में यह संघर्ष दो विचारधाराओं के बीच था। राष्ट्रवादी नौजवान इस तैयारी के साथ सूरत गए थे कि अगर कांग्रेस पर हम कब्जा नहीं कर सके, तो हम उसे तोड़ देंगे। लेकिन तिलक जी और लाजपतराय को यह बात मालूम नहीं थी। लाजपतराज तो इस विचार के थे कि नरम दलवालों को साथ लेकर ही कांग्रेस को चलाया जाए, नहीं तो राष्ट्रवादियों को सरकार की भयानक दमन नीति का सामना करना पड़ेगा। किन्तु जब नरम दलवाले थोड़ा भी झुकने को तैयार नहीं हुए, दोनों दलों के बीच झगड़ा हो गया, जिसमें लोगों ने एक-दूसरे पर कुर्सियाँ फेंककर प्रहार किये। अब यह बात निश्चित सी हो गई है कि कांग्रेस को तोड़ डालने का आखिरी फैसला श्री अरविन्द का ही था।

लाला लाजपतराय की आशंका वृथा नहीं थी। जब सरकार ने देखा कि उग्रतावादी बड़े जोश में हैं और उन्होंने नरम दलवालों की बोलती बन्द कर दी है, वह राष्ट्रवादियों का दमन करने पर उतारू हो गई। तिलक जी पर मुकदमा चलाया गया और वे जेल भेज दिये गए तथा लाला लाजपतराय को देशनिकाले में जाना पड़ा।

जैसे-जैसे जन-जागृति गहराई में पहुंचने लगी, जनता की ओर से की जानेवाली स्वराज्य की माँग तेज होने लगी और सरकार की दमन-नीति की कठोरता भी बढ़ने लगी। सरकार की दमन-नीति इतनी विकराल हो उठी कि भारतवासी तो क्या, लन्दन में रहनेवाले भारत सचिव भी घबरा उठे। उन्होंने वायसराय को एक पत्र लिखकर कहा:

'हमें भारत में शान्ति बनाये रखने का प्रयास अवश्य करना चाहिए, किन्तु कठोरता की अति का मार्ग शान्ति का मार्ग नहीं है। उलटे वह बम का मार्ग है।"

और, सचमुच ही देश में रह-रहकर बम के धड़ाके होने लगे और इन धड़ाकों से जहाँ जनता के भीतर आशा का उदय होने लगा, वहाँ सरकारी हलकों में भय और कंपकंपी समा गई।
आखिर को 10 अप्रैल, 1908 के दिन खुदीराम बोस नामक एक बाल क्रान्तिकारी ने मुजफ्फरपुर (बिहार) में बम फेंककर दो निर्दोष महिलाओं को मार डाला खुदीराम जिस अंग्रेज जज को मारने के लिए मुजफ्फरपुर गया था, वह जज तो बच निकला, लेकिन दो अंग्रेज महिलाओं के प्राण चले गए, जिन्हें मारना खुदीराम का लक्ष्य नहीं था। फिर क्या था, सरकार अचानक बौखला उठी और वह अन्धाधुन्ध नौजवानों को गिरफ्तार करने लगी। श्री अरविन्द के भाई वारीन्द्र घोष नामी क्रान्तिकारी थे। सरकार ने उन्हें इसलिए गिरफ्तार कर लिया कि उनका सम्बन्ध कलकत्ते में बम बनानेवाले किसी संगठन से पाया गया था और चूँकि वारीन्द्र श्री अरविन्द के भाई थे, इसलिए सरकार ने 5 मई, 1908 को श्री अरविन्द को भी गिरफ्तार कर लिया और वे अलीपुर जेल में बन्द कर दिये गए, जहाँ मुजरिम के रूप में उन्हें पूरे एक साल तक रहना पड़ा।

श्री अरविन्द तथा अन्य नवयुवकों के खिलाफ जो मुकदमा चलाया गया, वह इतिहास में 'अलीपुर बम केस' के नाम से विख्यात है। उस मुकदमे की तफसील में जाना यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है। उल्लेखनीय बात यह है कि यह मुकदमा श्री अरविन्द के लिए वरदान सिद्ध हुआ और एक वर्ष तक अलीपुर जेल में रहते-रहते, भीतर से उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूपान्तरण हो गया। कहते हैं, इस कारावास में श्री अरविन्द को भगवान वासुदेव का साक्षात्कार हुआ और उन्होंने श्री अरविन्द से, अन्तर्ध्वनि की भाषा में, कहा कि इस मुकदमे से तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, क्योंकि तुमसे मुझे कोई और काम लेना है, जो राजनीति से कहीं ऊँचा और महान है।

विवरणों से पता चलता है कि अलीपुर जेल में श्री अरविन्द जब ध्यान करते थे, तब स्वामी विवेकानन्द की आत्मा उनसे बात करती थी। संबुद्ध मन और अतिमानस तक पहुँचने का मार्ग श्री अरविन्द को स्वामी विवेकानन्द ने ही बताया था।

जेल में श्री अरविन्द के साथ जो आध्यात्मिक घटना घटी, उससे हम यही अनुमान लगा सकते हैं कि भगवान ने अब श्री अरविन्द को राजनीति से अलग कर लेने का निश्चय कर लिया था।

यह मुकदमा बड़ा ही सनसनीखेज था उसकी चर्चा सारे देश में हो रही थी और चिन्ता के मारे सारी जनता साँस साधकर इन्तजार कर रही थी कि देखें, श्री अरविन्द का क्या होता है। श्री अरविन्द जनता के वरेण्य वीर, हृदय सम्राट और देवता हो गए थे। सारा देश उन पर प्राण न्योछावर करने को तैयार था। श्री अरविन्द के वकील श्री चित्तरंजन दास थे। उनकी बहस पूरे आठ दिनों तक चली थी। यह बहस भी वक्तृत्वकला का उच्चतम दृष्टान्त थी। किन्तु उसका अद्भुत और अमर अंश वह सन्दर्भ है, जिसमें श्री सी. आर. दास ने जज की विवेक-बुद्धि को जगाते हुए कहा था:- 'मेरी अपील यह है कि इस विवाद के पूर्ण रूप से शमित हो जाने के बहुत बाद, खलबली, अशान्ति और आन्दोलन के खत्म हो जाने के बहुत बाद, स्वयं श्री अरविन्द के मृत और गत हो जाने के बहुत बाद, श्री अरविन्द देशभक्ति के कवि, राष्ट्रीयता के पैगम्बर और मानवता के प्रेमी के रूप में याद किए जाएँगे। उनके मृत और गत होने के बहुत बाद, उनके शब्दों की ध्वनि और प्रतिध्वनि केवल भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि समुद्रों के आरपार सारे संसार में गूँजेगी। इसलिए मेरा निवेदन है कि श्री अरविन्द केवल इस अदालत के सामने नहीं, बल्कि इतिहास के हाइकोर्ट के सामने खड़े हैं।'

जूरी ने एकमत होकर निर्णय दिया कि श्री अरविन्द निर्दोष हैं और तदनुसार वे मई, 1909 ई. में जेल से छोड़ दिये गए।
जब श्री अरविन्द जेल से बाहर आए, उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि जनता के भीतर जो उत्साह उन्होंने संचारित किया था, ठंडा पड़ गया है और वातावरण एक प्रकार की बेचैन शान्ति से बोझिल है। अपने उत्तरपाड़ा वाले सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कहा :

'जब मैं जेल गया था, उस समय सारे देश में 'वन्दे मातरम्' की पुकार गूँज रही थी और देश जीवित तथा सप्राण मालूम होता था। देश के करोड़ों लोग जड़ता और पतनशीलता के गर्त से जगकर उठ खड़े हुए थे और सारा देश आशा और उमंग की तरंग में था। जब मैं जेल से बाहर आया, मैंने कान लगाया कि 'वन्दे मातरम्' की पुकार कहीं से आती है या नहीं। लेकिन कहीं कोई पुकार नहीं थी, चारों ओर केवल मनहूस शान्ति थी। देश के ऊपर निस्तब्धता छा गई है और लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं।"

स्पष्ट ही, यह सरकार की दमन नीति का परिणाम था। जैसा उसका स्वभाव है, दमन की नीति थोड़ी देर के लिए कामयाब हो गई थी। श्री अरविन्द ने जनता को धीरज बंधाते हुए कहा :

'दमन का चक्र और कुछ नहीं, भगवान के हाथ का हथौड़ा है। इस हथौड़े से पीटकर वे हमें एक आकार दे रहे हैं, हमें एक राष्ट्र

के रूप में तैयार कर रहे हैं, जिसका इस्तेमाल संसार में भगवान के कार्य के लिए किया जा सके।

जेल से बाहर आकर श्री अरविन्द ने अंग्रेजी में 'कर्मयोगी' और बंगला में 'धर्म' नाम से दो अखबार निकाले। इन पत्रों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रवादी दल का पुनः संगठन था, क्योंकि वह दल टूटकर बिखरा जा रहा था। लेकिन इन पत्रों का सारा धरातल केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं था, अक्सर वह उठ उठकर अध्यात्म की ऊँचाई को छूने लगा था। यह इस बात का प्रमाण था कि सम्पादक का व्यक्तित्व अब राजनीति और योग, दोनों ही दिशाओं में काम कर रहा है।

अपने उत्तरपाड़ा वाले भाषण में श्री अरविन्द ने कहा था कि जब मैं जेल में था, स्वयं वासुदेव ने मुझसे कहा था 'राष्ट्र के भीतर मैं विराजमान हूँ, उसकी हलचल के भीतर से भी मैं ही काम कर रहा हूँ। जो मैं चाहूँगा, वह होगा, दूसरों का चाहा हुआ कभी नहीं होगा। जो परिवर्तन मैं लाना चाहता हूँ, मनुष्य की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकेगी।"

ऐसा लगता है कि जब श्री अरविन्द जेल से बाहर आए थे, उन्हें इस प्रकार का कोई आभास मिल चुका था कि अब उन्हें राजनीति को छोड़कर अपना सारा ध्यान योग पर केन्द्रित करना होगा। क्योंकि जेल में उन्होंने भगवान की आवाज सुनी थी कि 'यह नई पीढ़ी है, यह नया शक्तिशाली राष्ट्र है, जो मेरे आदेश से खड़ा हो रहा है। ये लोग तुमसे बड़े हैं। तुम डरते किस बात से हो? अगर तुम मैदान से हट जाओ या सो रहो, काम तब भी पूरा होकर रहेगा।'

'कर्मयोगी' वैसे तो राजनीतिक पत्र था, किन्तु श्री अरविन्द के आध्यात्मिक विचारों की प्रतिध्वनि उसके भीतर से बार-बार सुनाई देती थी।

'हमारा विश्वास है कि भारत इसलिए उठ रहा है कि योग को वह मानव-जीवन के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित कर सके। योग के द्वारा ही भारत को अपनी स्वतंत्रता, अपनी एकता, अपनी महिमा की अनुभूति होगी। और योग के द्वारा ही भारत यह शक्ति प्राप्त करेगा कि वह अपनी स्वतंत्रता, एकता और महत्ता की रक्षा कर सके। आनेवाली जो चीज हमें दिखाई पड़ती है, वह आध्यात्मिक क्रान्ति है। भौतिक उन्नति तो उसकी छाया मात्र है।'

वे यह भी अनुभव करने लगे थे कि देश में जिन समाज-सुधारों का प्रचार किया जा रहा है, वे केवल यांत्रिक परिवर्तन हैं। जब तक आत्मा में परिवर्तन नहीं होगा, मुसीबत और पतनशीलता खत्म नहीं होगी। परित्राण तो केवल आत्मा करता है। जब तक हमारा हृदय मुक्त और महान नहीं होगा, हम सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी मुक्त नहीं होंगे।'

यह उक्ति उस स्वप्न की दूरस्थ भूमिका जैसी लगती है, जिसका आख्यान श्री अरविन्द, आगे चलकर, अतिमानस के प्रसंग में करनेवाले थे। 1909 ई. के जुलाई महीने में कलकत्ते में गर्म अफवाह फैलने लगी कि सरकार श्री अरविन्द से बिलकुल ही तंग आ गई है और उसने निश्चय कर लिया है कि श्री अरविन्द को देश से निकाल दिया जाए। इससे भी अरविन्द को कुछ भी घबराहट नहीं हुई, लेकिन अफवाह का विश्वास करके उन्होंने आनेवाली विपत्ति से जूझने की तैयारी शुरू कर दी। इसी मनोदशा में उन्होंने 'अपने देशवासियों के नाम खुला पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने 'अगर मुझे देश-निकाला दिया जाए' तथा 'अगर मैं वापस न आ सकूँ' आदि कई अर्थपूर्ण वाक्यांशों का प्रयोग किया। इस पत्र को श्री अरविन्द ने 'देशवासियों के नाम मेरी अन्तिम राजनीतिक वसीयत' की संज्ञा दी और जनता से उन्होंने कहा :

'सभी महान आन्दोलन ईश्वर के द्वारा भेजे जानेवाले अपने नेता की प्रतीक्षा करते हैं। वह नेता भगवान की शक्ति का तत्पर स्रोत होता है। जब ऐसे नेता पहुंच जाते हैं, तभी आन्दोलनों को सफलता मिलती है। चूंकि राष्ट्रवादी दल देश के भविष्यत का थातीदार है, इसलिए उसे उस नेता की राह देखनी चाहिए, जो आनेवाला है।'

इतिहास ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि जिस नेता के आगमन की श्री अरविन्द ने भविष्यवाणी की थी, वह नेता स्वयं महात्मा गांधी थे। यह दुःख की बात है कि इन दो महान नेताओं की कभी भेंट भी नहीं हो सकी।

फरवरी, 1910 में श्री अरविन्द ने कलकत्ता छोड़ दिया और वे पास के ही फ्रांसीसी उपनिवेश चन्दरनगर चले गए। समझा यह जाता है कि श्री अरविन्द ने ऐसा इसलिए किया कि भगिनी निवेदिता से उन्हें यह पता चल गया था कि सरकार इस बार श्री अरविन्द को पकड़कर देश से बाहर कर देना चाहती है और श्री अरविन्द सरकार की इस कुत्सित योजना को विफल कर देने को कटिबद्ध थे। और सचमुच ही जब श्री अरविन्द कलकत्ता से बाहर निकल गए, सरकार ने उनके खिलाफ मुकदमा दायर कर दिया। श्री अरविन्द के खिलाफ दायर किया जाने वाला यह तीसरा मुकदमा था, लेकिन सबूत के अभाव में

वह भी खारिज हो गया।

अन्त में अंतर्ध्वनि से या ऊपर से 'आदेश' पाकर श्री अरविन्द ने चन्दरनगर को भी छोड़ दिया और वे पांडिचेरी के लिए रवाना हो गए, जो उस समय फ्रांस के ही अधिकार में था। पांडिचेरी में श्री अरविन्द 5 अप्रैल, 1910 को पहुँचे और फिर मृत्यु पर्यन्त वहीं रह गए। पांडिचेरी में उन्होंने योग-साधना की कविताएँ लिखीं, दर्शन और बड़े-बड़े निबन्ध लिखे तथा मानवता के इतिहास में उन्होंने अपने को अमर कर दिया।

जब श्री भास्कर लेले ने श्री अरविन्द से योग धारण करने को कहा था, उस समय श्री अरविन्द ने जवाब दिया था कि कविता और राजनीति से मुझे बेहद प्यार है। योग मैं तभी कर सकता हूँ, जब कविता और राजनीति के साथ वह कोई हस्तक्षेप नहीं करे। किन्तु अन्त में श्री अरविन्द ने योग के लिए राजनीति का त्याग कर दिया, यद्यपि कविता वे तब भी करते रहे।

अनेक बार यह शंका उठाई जाती है कि श्री अरविन्द ने अचानक राजनीति को क्यों त्याग दिया? राजनीति का त्याग कहीं उन्होंने यह सोचकर तो नहीं किया कि अंडमान की कालकोठरी में आजीवन सड़ने के बजाय यह कहीं श्रेष्ठ है कि एकान्त में बैठकर कविता लिखी जाए, योग-साधना की जाए और मानवता के उद्धार का कोई आध्यात्मिक मार्ग ढूँढ़ा जाए?

इस अनुमान में कुछ ताकत जरूर दिखाई देती है। किन्तु श्री अरविन्द की कठोर तपस्या, उनकी विराट उपलब्धि और उनके जीवनव्यापी अध्यवसाय के सामने यह अनुमान हास्यास्पद मालूम होता है। श्री अरविन्द जीवन से भागने वाले पुरुष नहीं थे, न वे जिन्दगी से हारकर पांडिचेरी में शरण खोजने गए थे। उनका योग नकारात्मक नहीं, स्वीकारात्मक था। भगवान ने श्री अरविन्द का उपयोग पहले भारतीय जीवन की जड़ता को तोड़ने के लिए किया और जब यह कार्य सम्पन्न हो गया, उन्होंने किसी और बड़ी साधना के लिए श्री अरविन्द को एकान्त में खींच लिया। अलीपुर जेल में कोई-न-कोई चमत्कार अवश्य घटित हुआ होगा, जिससे श्री अरविन्द इस निष्कर्ष पर आ गए कि राजनीति को साथ लेकर योग साधना नहीं की जा सकती अतएव योग के लिए अब राजनीति का त्याग ही उचित है।

सन् 1920 ई. में जब कांग्रेस ने सरकार से असहयोग करने का निश्चय किया, श्री अरविन्द के एक शिष्य श्री दोराई स्वामी ऐयर ने श्री अरविन्द से पूछा कि आपके बिना भारत का स्वाधीनता संग्राम कैसे चलेगा? श्री अरविन्द का उत्तर था 'मैंने भगवान से यह आश्वासन पा लिया है कि भारत स्वतंत्र हो जाएगा। अगर यह आश्वासन मुझे नहीं मिला होता, मैं राजनीति को हरगिज नहीं छोड़ता। योग मैंने परमेश्वर के आदेश से धारण किया है।' दिसम्बर, सन् 1918 ई. में श्री अम्बालाल पुराणी श्री अरविन्द से मिलने को पांडिचेरी गए थे। उन्होंने श्री अरविन्द से कहा कि हमारी क्रान्ति की तैयारी पूरी हो चुकी है। अब आपको चाहिए कि हमारा नेतृत्व करने को आप बाहर आएँ। श्री अरविन्द ने उत्तर दिया: 'भारत को स्वाधीन करने के लिए शायद रक्तपात की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

एक बार श्री चित्तरंजन दास श्री अरविन्द से मिलने को पांडिचेरी गए। इस मुलाकात का जिक्र करते हुए एक दिन श्री अरविन्द ने कहा : 'श्री सी. आर. दास मेरी शिष्य होना चाहते थे। मैंने उनसे कहा कि जब तक आप राजनीतिक आन्दोलन में हैं, मेरा योग आपसे नहीं चलेगा।'

सन् 1920 ई. में श्री अरविन्द के पुराने साथी श्री बी. एस. मुंजे श्री अरविन्द से मिलने को पांडिचेरी गए और उनसे उन्होंने कहा कि 'नागपुर में होनेवाली कांग्रेस का सभापतित्व आप स्वीकार कीजिए।' श्री अरविन्द ने जवाब दिया : 'अब तो यह असम्भव है कि राजनीति के साथ मैं योग को मिला सकूँ। बाकी जिन्दगी के लिए मैंने योग को मिशन के रूप में धारण कर लिया है।'

सन् 1932 ई. में उन्होंने किसी साथी या मित्र को पत्र लिखा था कि 'राजनीति से वापस मैं इसलिए नहीं आया कि अब मैं वहाँ कोई काम नहीं कर सकता था। राजनीति को मैंने इसलिए छोड़ा कि इस आशय का ऊपर से मुझे स्पष्ट आदेश था। मैं नहीं चाहता था कि कोई चीज मेरे योग के साथ हस्तक्षेप करे।"

इतना होने पर भी श्री अरविन्द अपने देश या संसार की राजनीति से कटे हुए नहीं थे। जब हिटलर सभ्यता को रौंदने पर उतारू हो गया, श्री अरविन्द ने उसके खिलाफ वक्तव्य दिया था। जब सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का प्रस्ताव लेकर भारत आए थे, तब भी श्री अरविन्द ने कांग्रेस की कार्य समिति को सुझाव भेजा था कि यह प्रस्ताव कांग्रेस स्वीकार कर ले। ये बातें इसका प्रमाण हैं कि श्री अरविन्द का योग पलायनवाद का पर्याय नहीं था। योगी हो जाने के बाद भी वे अपने धरातल से, देश और संसार की गतिविधि में भाग ले रहे थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्री अरविन्द और श्री माँ ने युद्ध कोष में चन्दा दिया था और मित्र राष्ट्रों के पक्ष में सार्वजनिक वक्तव्य देते हुए कहा था:

'हम मानते हैं कि यह युद्ध केवल आत्मरक्षा का युद्ध नहीं है, केवल उन देशों की रक्षा का युद्ध नहीं है, जिन्हें जर्मनी और जीवन की नाजी पद्धति अपने प्रभुत्व में लाना चाहती है, बल्कि यह युद्ध सभ्यता की रक्षा का युद्ध है। उन सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा का युद्ध है, जिन्हें इस सभ्यता ने उत्पन्न किया है। यह युद्ध मानवता के समग्र भविष्य की रक्षा का युद्ध है।"

16 अक्टूबर, 1939 के दिन श्री अरविन्द ने हिटलर के ऊपर 'बौना नेपोलियन' शीर्षक से एक कविता लिखी थी, जिसके अन्त में उन्होंने कहा था 'यह राक्षस तूफानों से बुहारे हुए रास्ते पर दौड़ रहा है। इस रास्ते पर उसे या तो अपने से भी बड़ा राक्षस मिलेगा या उस पर भगवान का वज्र गिरेगा।' श्री अरविन्द का शाप हिटलर को लग गया।

जब सर स्टैफोर्ड क्रिप्स मार्च, 1942 ई. में भारत आए और उन्होंने भारत में अपने प्रस्ताव के विषय में वक्तव्य दिया, तब इस वक्तव्य का स्वागत करते हुए श्री अरविन्द ने उन्हें लिखा था :

यद्यपि अब मेरा कार्य-क्षेत्र राजनीति नहीं, अध्यात्म है, किन्तु मैं भी भारतीय स्वतंत्रता का कार्यकर्ता और राष्ट्र का नेता रहा हूँ। उस हैसियत से मैं उस प्रस्ताव की प्रशंसा करता हूँ, जिसे तैयार करने में आपने बड़ा प्रयास किया है। मुझे उम्मीद है कि यह प्रस्ताव स्वीकृत किया जाएगा और देश उसका सही उपयोग करेगा।'

इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने श्री राजगोपालाचारी और श्री बी. एस. मुंजे को अपनी राय भेजी और कार्य समिति को अपना सुझाव श्री दोराई स्वामी ऐयर के मार्फत भेजा। किन्तु कांग्रेस ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, क्योंकि गांधी जी ने कह दिया था कि यह प्रस्ताव उस बैंक का पोस्टडेटेड चेक है, जिसका दिवाला निकलनेवाला है।

जिस समय क्रिप्स भारत आए थे, लड़ाई में अंग्रेजों का बुरा हाल था और कांग्रेस के नेता इस भाव से भरे हुए थे कि इंग्लैंड अवश्य हार जाएगा। इसलिए सरकार में सम्मिलित होने में वे घबरा गए। किन्तु श्री अरविन्द जानते थे कि जीत मित्र-राष्ट्रों की होगी, अतएव देश इस मौके को हाथ से न जाने दें, इसी में उसका कल्याण है। लेकिन जैसा कि श्री आयंगार ने लिखा है : 'दैवी बुद्धिमत्ता को अदूरदर्शी राजनीतिक हिसाब-किताब ने वीटो कर दिया।'

इस स्थिति को श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अपने 13 अगस्त, 1951 के वक्तव्य में स्वीकार किया था: 'श्री अरविन्द वस्तुओं के भीतर छिपी आत्मा को देख लेते थे। भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में उनकी दृष्टि अमोघ थी, वह कभी भी गलती नहीं करती थी। जब सन् 1939 ई. में युद्ध आरम्भ हुआ, श्री अरविन्द ने कहा था, इंग्लैंड और फ्रांस की विजय आसुरी शक्ति पर देवी शक्ति की विजय का प्रमाण होगी। जब स्टैफोर्ड क्रिप्स अपने पहले प्रस्ताव के साथ भारत आए थे, श्री अरविन्द उस समय भी बोले थे। उन्होंने कहा था 'भारत को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए।' लेकिन उनके परामर्श को हमने स्वीकार नहीं किया। अब हम अनुभव करते हैं कि अगर हमने क्रिप्स के पहले प्रस्ताव को मान लिया होता, तो देश का विभाजन नहीं होता, शरणार्थी समस्या नहीं उत्पन्न होती, न काश्मीर का प्रश्न खड़ा हुआ होता।'

यहाँ हम अब यह भी जोड़ सकते हैं कि तब बंगला देश की ट्रेजडी भी नहीं हुई होती।

श्री अरविन्द की राष्ट्रीय भावना अंग्रेजों के प्रति घृणा से उत्पन्न नहीं हुई थी। घृणा तो उन्हें न किसी देश से थी, न सम्प्रदाय से। उनकी राष्ट्रीय भावना के भीतर मनुष्य मात्र का उत्थान और कल्याण समाहित था। सन् 1907 ई. के 'वन्दे मातरम्' के किसी अंक में उन्होंने लिखा था :

'हम स्वराज्य की लड़ाई का समर्थन इसलिए करते हैं कि स्वतंत्रता राष्ट्रीय जीवन की पहली शर्त है। दूसरा कारण यह है कि स्वराज्य के बिना राष्ट्रीय जीवन का विकास नहीं किया जा सकता। तीसरा कारण यह है कि मनुष्यता की उन्नति का जो अगला सोपान है, वह आधिभौतिक नहीं, आध्यात्मिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक उन्नति का सोपान होगा और इस सोपान पर नेतृत्व स्वतंत्र एशिया, विशेषतः, स्वतंत्र भारतवर्ष को देना होगा। अतएव सारे संसार के हित में भारत की स्वाधीनता परमावश्यक है। भारत को स्वराज्य इसलिए चाहिए कि उसे जीना है। स्वराज्य भारत को इसलिए भी चाहिए कि उसे सारे संसार के लिए जीना है। लेकिन भारत धनाभिमानी, स्वार्थी राष्ट्र बनकर नहीं जिएगा, राजनीतिक और भौतिक समृद्धि का दास बनकर नहीं जिएगा। वह मनुष्य-जाति के आध्यात्मिक और

बौद्धिक हित के लिए स्वतंत्र होकर जीवन-यापन करेगा।'

श्री अरविन्द ने देश को जगाने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा। लेकिन देश जब पूर्णरूप से जाग्रत हो गया और श्री अरविन्द को यह विश्वास हो गया कि अब भारत स्वतंत्र हो जाएगा, वे राजनीति को छोड़कर इस उद्देश्य से एकान्त में चले गए कि राजनीति से ऊपर उठकर वे किसी बड़े ध्येय के लिए काम कर सकें। जासेफ बैपटिस्टा को उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था कि 'अब मेरी चिन्ता का विषय यह है कि भारत अपने आत्म निर्णय के अधिकार को लेकर क्या करेगा, वह अपनी स्वतंत्रता का कैसा उपयोग करेगा और अपना भविष्य वह किस दिशा में निर्धारित करेगा ।'

हमें आशा है कि भारत समस्त मानव जाति के लिए वह आध्यात्मिक भूमिका अदा करने में समर्थ होगा, जिसकी कल्पना श्री अरविन्द ने की थी।

[24 दिसम्बर, 1972]

आश्रम-गतिविधियाँ

४ जुलाई से ५ जुलाई - २०२२

विश्व हिंदी परिषद के द्वारा आयोजित राष्ट्रीय आयुष कॉन्फ्रेंस में श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की सक्रिय सहभागिता रही। इस कॉन्फ्रेंस में डॉ. अपर्णा रॉय ने 'समग्र जीवन के प्रति श्री अरविंद का दृष्टिकोण' विषय पर वार्ता प्रस्तुत करते हुए आश्रम का प्रतिनिधित्व किया।

५ जुलाई - २०२२

Tara Didi's Birthday

५ जुलाई तारा दीदी का जन्म-दिन था। इस साल भी उनका जन्मदिन वृक्षारोपण अभियान के साथ मनाया गया। समाधि और ध्यान-कक्ष के पास और आश्रम में कई अन्य स्थानों पर और द मदर्स इंटरनेशनल स्कूल तथा मिराम्बिका में भी पेड़ लगाए गए,। श्री अरविन्द के जीवन पर आधारित प्रदर्शनी को सुबह 10:30 बजे से आगंतुकों के लिए खुला रखा गया था। संध्या समय ध्यान-कक्ष में भक्ति संगीत के साथ तारा दीदी द्वारा श्री माँ की वाणी का सस्वर पाठ क्या गया।

रंगमंच कार्यशाला

4 जुलाई से 9 जुलाई 2022 तक श्री अरविंद आश्रम - दिल्ली शाखा में रंगमंच पर एक 7-दिवसीय कार्यशाला आयोजित की गई। इस कार्यशाला ने 30 व्यावसायिक प्रशिक्षुओं को नई अंतर्दृष्टि और समझ प्रदान की। वाल्टर पीटर के छात्र मुस्कान शर्मा और फरमान सैफी, जो श्री अरबिंदो और श्री माँ के अनुयायी हैं, ने बड़े उत्साह और उत्साह के साथ सभी सत्रों का संचालन किया।

१४ अगस्त - २०२२

विश्व हिंदी परिषद द्वारा आयोजित वेबिनार में भी श्रीअरिविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) की सहभागिता रही,जिसमें 'श्री अरविंद के विचारों का भारत' विषय पर वार्ता में शामिल हो कर डॉ. अपर्णा रॉय ने आश्रम का प्रतिनिधित्व किया।

कोई बात नहीं यदि सैकड़ों प्राणी घोरतम अज्ञान में डूबे हुए हैं। जिनका मैंने कल दर्शन किया है, वे इस पृथ्वी पर हैं उनकी उपस्थिति इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि वह दिन अवश्य आएगा जब अंधकार प्रकाश में बदल जाएगा । जब भगवान का राज्य पृथ्वी पर सचमुच स्थापित हो जाएगा।

-श्रीमाँ

श्री अरविंद आश्रम प्रांगण में श्रीमती कीर्ति अधिकारी के निर्देशन में शरीर मन और आत्मा (Body, Mind and Spirit) पर आधारित एक युवा शिविर का आयोजन किया गया जिसका विवरण निम्नवत् है
प्रतिभिगियों चयन का मानदंड समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की युवा आबादी को अवसर देना था । सभी प्रतिभागी श्री अरविन्द सोसाइटी के केंद्रों से जुड़े हुए थे।

शिविर के उद्देश्य इस प्रकार थे:

क) श्री अरबिंदो की 150वीं जयंती मनाने के लिए और इस प्रक्रिया में उन्हें हमारे स्वतंत्रता दिवस के महत्व और भारत की स्वतंत्रता की दिशा में श्री अरबिंदो की भूमिका के बारे में जागीरुक करना।

ख) उन्हें अपने दैनिक जीवन में अभिन्न योग के सिद्धांतों को लागू करने में मदद करने के लिए ।

ग) अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण चरण में चुनाव करते समय खुद को बेहतर ढंग से समझने और जानने का अवसर देना।

घ) शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, और मानव वक्तित्व के विभिन्न भागों से अवगत होना, ये शिविर, श्रमदान , व्याख्यान, संवाद सत्र जैसी विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से संपन्न हुआ। मार्चपास्ट में 15 अगस्त के शिविर प्रशिक्षण के मुख्य आकर्षणों में से एक था। शाम को अतिथि वक्ताओं द्वारा वार्ता में भाग लेने के बाद प्रसाद का आयोजन किया गया। हर दिन कुछ समय शिविर के प्रतिभागियों द्वारा की जाने वाली सांस्कृतिक प्रस्तुति के अभ्यास पर व्यतीत होता था। उन्होंने माँ के प्रतीक के बारह गुणों के आधार पर एक सुंदर प्रस्तुति की। दिल्ली आश्रम से डॉ बिजलानी , डॉ अपर्णा, विजय भारती के इनपुट के साथ मुख्य समन्वयक और सूत्रधार एस.ए.एस. पैगम्बरपुर शाखा से कीर्ति अधिकारी थीं।

विगत 1 वर्ष से दिल्ली आश्रम प्रांगण में श्रीअरविंद आश्रम (दिल्ली शाखा)तथा श्री अरविंद सोसाइटी की हिंदी क्षेत्रीय समिति के संयुक्त प्रयास से श्री अरविंद के 150 वें जयंती वर्ष के उपलक्ष में वार्ताओं के विविध कार्यक्रम आयोजित किये जाते रहे,उसी श्रृंखला के अंतर्गत आश्रम में अगस्त11से15 तक प्रति दिन कुछ विशेष वार्ताएँ एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गए। कार्यक्रमों का विवरण निम्नवत रहा –

११ अगस्त - २०२२

वार्ता

प्रदर्शनी - 'श्री अरविन्द के अलोक में भारत का संविधान' का उद्घाटन

"श्री अरविन्द के अलोक में भारत का संविधान"
वार्ताकार- सूर्यप्रताप सिंह राजावत

द मदर्स इंटरनेशनल स्कूल के छात्र - छात्राओं द्वारा श्री अरविन्द की कविता "*कौन*" *(WHO)* पर आधारित नृत्य - नाटिका की प्रस्तुति

१२ अगस्त - २०२२

श्री अरविन्द के जीवन पर आधारित फिल्म "Sri Aurobindo: An Indian Mystic Who Worked for Human Unity" का प्रदर्सन

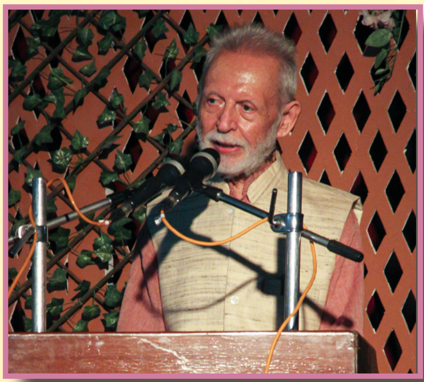

वार्ताएँ - डॉ रमेश बिजलानी
डॉ भरत गुप्त

मथुरा से आयें छात्र - छात्राओं द्वारा महारास (कृष्ण-लीला) प्रस्तुत की गयी

१३ अगस्त - २०२२

१३-८-२०२२ श्री अरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) के संस्थापक श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर (चाचाजी) की जन्मतिथि धूमधाम से मनाई गयी , इस दिन का आरंभ ध्यान कक्ष में श्री माँ के आवाहन द्वारा किया गया तत्पश्चात चाचाजी की समाधि के निकट हवन किया गया एवं प्रसाद वितरण हुआ

द मदर्स इंटरनेशनल स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा भक्तिसंगीत एवं चाचाजी के जीवन की विशिष्टताओं की प्रस्तुति की गयी

वार्ता - "रूपांतरण के पुरोधा"- श्री सुरेंद्रनाथ जौहर 'फ़क़ीर'-सुश्री सुरेंद्र शर्मा द्वारा

पुस्तक विमोचन - डॉ रमेश बिजलानी द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक 'Whose Gold?' का सुश्री सुरेंद्र शर्मा द्वारा विमोचन किया गया

दोपहर १.३० बजे चाचाजी के जीवन पर आधारित फिल्म दिखाई गयी

संन्ध्या ६.४५ बजे ध्यान-कक्ष में भक्ति-संगीत, समाधि - प्रांगण में चारों तरफ आस्था के दीप प्रज्वलित किये गए तथा प्रसाद वितरण हुआ

१४ अगस्त - २०२२

14 अगस्त प्रातः 10:00 रविवार सत्संग में भक्ति संगीत -श्रीमती मिठू पॉल
वार्ता - "मानव चेतना एवं श्री अरविंद का राष्ट्रवाद' वार्ताकार - डॉ रमेश बिजलानी
संध्या 4:00बजे-– हॉल ऑफ ग्रेस में श्री प्रशांत खन्ना द्वारा श्री अरविंद की लोकप्रिय कविता 'बाजी प्रभु' पर आधारित एक वार्ता प्रस्तुत की गई। तत्पश्चात पूना से आये कलाकार समूह द्वारा इसी कविता पर आधारित नृत्य नाटिका का भावपूर्ण प्रदर्शन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षताडॉ. किरन बेदी ने की।

श्रीमती प्रेमशीला डॉ किरण बेदी से उपहार लेते हुए

श्रीमती मिठू पॉल मुख्य अतिथि डॉ. किरण बेदी से उपहार लेते हुए

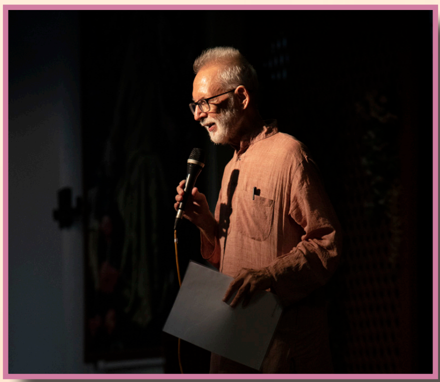

वार्ता - "मानव चेतना एवं श्री अरविंद का राष्ट्रवाद' वार्ताकार - डॉ रमेश बिजलानी

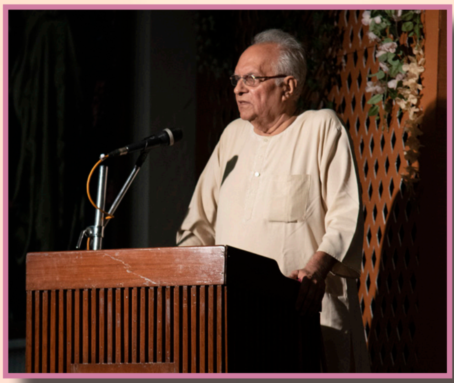

श्री प्रशांत खन्ना द्वारा श्री अरविंद की लोकप्रिय कविता 'बाजी प्रभु' पर आधारित एक वार्ता देते हुए

पूना से आये कलाकार समूह द्वारा श्री अरविंद की लोकप्रिय कविता 'बाजी प्रभु' पर आधारित नृत्य नाटिका का भावपूर्ण प्रदर्शन।

१५ अगस्त - २०२२

श्री अरविंद की 150 वीं जयंती का पावन दिवस एवं भारतवर्ष की स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव गहन श्रद्धा और असीम उल्लास पूर्वक मनाया गया इस दिन प्रातः काल सुश्री स्नीला बसु द्वारा ध्यान-कक्ष में ईश्वरी चेतना का आवाहन किया गया। सुबह 11:00 बजे पूरा आश्रम प्रांगण झंडारोहण के साथ वंदे मातरम की ध्वनि से गूंज उठा। तत्पश्चात ध्यान-कक्ष में राज्यसभा के भूतपूर्व सदस्य तथा श्री अरविंद एवं श्री मां के गहन अनुयायी डॉक्टर कर्ण सिंह ने एक वार्ता प्रस्तुत की।

संध्या 3:30 बजे सभी ने हॉल ऑफ ग्रेस की ओर प्रस्थान किया जहां दीप प्रज्वलन के साथ हमारे गुरु के प्रति समर्पित सांस्कृतिक कार्यक्रम का आरंभ हुआ। आज के कार्यक्रम की प्रस्तुति आश्रम के युवा वर्ग द्वारा की गई थी, जिसका निर्देशन श्री हीरा दास जी ने किया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता लेफ्टिनेंट जनरल डॉ. दलजीत सिंह जी ने की थी। आश्रम के युवक-युवतियों ने इस विशिष्ट कार्यक्रम में शारीरिक व्यायाम योगासन मुद्राएँ ,शास्त्रीय नृत्य एवं पिरामिड-प्रदर्शन के साथ-साथ एक सैनिक की शौर्य पूर्ण गाथा का शानदार प्रदर्शन किया। कार्यक्रम समाप्ति के पश्चात मुख्य अतिथि ने श्री हीरा दास को उनके अद्भुत निर्देशन एवं श्रीमती प्रेम शीला तथा श्रीमती मिठू पॉल को उनके मधुर संगीत की सराहना स्वरूप श्रीअरविन्द आश्रम ,दिल्ली शाखा की तरफ से स्नेहोपहार भेट किये।

इस प्रकार श्री अरविंद की 150वीं जयंती के उपलक्ष में श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा एवं श्री अरविंद सोसाइटी हिंदी क्षेत्रीय समिति के सहयोग से आयोजित यह पंच दिवसीय कार्यक्रम संपन्न हुआ।

"आजादी का अमृत महोत्सव"
राष्ट्र का ७५ वां स्वाधीनता दिवस-
तारा दीदी द्वारा झण्डारोहण

झण्डारोहण के वाद मिठाई वितरण

डॉ. कर्ण सिंह व्याख्यान देते हुए

१५ अगस्त को दीप प्रज्वलन के साथ आश्रम के युवा वर्ग द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम

आश्रम प्रांगण में संध्यां समय तारा दीदी के निर्देशन में मार्च-पास्ट करते हुए आश्रम वासी तथा
ध्यान-कक्ष में भक्ति-संगीत